॥ ईश्वरस्तुतिः ॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ १ । २४ ॥ तत्र निरतिशयं सार्वज्ञ्य-बीजम् ॥ १ । २५ ॥ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ १ । २६ ॥ योगदर्शनम् ॥

अथ

॥ श्रीधर्मालोकमुखसूत्रम् ॥

श्रीपातंजलयोगसूत्रैरलंकृतम् ।

भाषाव्याख्यासमेतं च ।

संवत् १९५८ वैक्रमे ।

52
1901

द० च० ॥ देवः पायादपायात् त्रिभुवनभवनस्तम्भभूतः स युष्मानायुष्मान् यस्य भक्त्या प्रभवति पुरुषः स्वर्गमार्गेऽपवर्गे । मत्स्यः कूर्मो वराहः पुरुषहरित्रपुर्वामनो जामदग्न्यः काकुत्स्थः कंसहन्ता स च सुगतमुनिः कल्किनामा च विष्णुः ॥ १ ॥

अथ दशावतारस्तुतिः ॥ दशावतारचरितमें क्षेमेंद्रकविने विष्णु भगवान्‌की स्तुति इस प्रकार की है । वह विष्णु भगवान् तुमको दुःखसे छुटावे जो देव है अर्थात् दिव्यस्वरूप है और दिव्यप्रकाशयुक्त है और दिव्यशक्तिमान् है, और तीनों लोकोंकी रक्षा करनेमें गृहके स्तम्भके समान स्थित है अर्थात् तीनों लोकोंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लिये हुए है, और जिस विष्णु भगवान्‌की भक्ति करनेसे पुरुष आयुष्मान् होकर स्वर्ग और मोक्षके मार्गमें चलनेको समर्थ हो जाता है । और मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण और बुद्धरूपको जो धारण कर चुका है और कल्किरूपको जो अब धारण करेगा अर्थात् जिसके यह दश नाम हैं सो विष्णु भगवान् तुमको (सब पुरुषोंको) दुःखसे छुटावे ॥ १ ॥

ह० ना० ॥ यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदांतिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः । अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ १ ॥

हनुमन्नाटकमें हनुमान्‌कवि लिखते हैं—वह यह तीनों लोकका नाथ विष्णु भगवान् तुमको वांछित फलको देवे जिस विष्णु भगवान्‌को शैव पुरुष शिव इस नामसे उपासना करते हैं, और जिसको वेदान्ती पुरुष ब्रह्म इस नामसे उपासना करते हैं, और जिसको बौद्धपुरुष बुद्ध इस नामसे उपासना करते हैं, और जिसको प्रणाम करनेमें चतुर नैयायिक पुरुष कर्ता इस नामसे उपासना करते हैं, और जिसको जैनपुरुष अर्हन् इस नामसे उपासना करते हैं, और जिसको मीमांसक पुरुष कर्म इस नामसे उपासना करते हैं; यह तीनों लोकका नाथ विष्णु भगवान् तुमको वांछित फल देवे ॥ १ ॥

अथ धर्मस्तुतिः—आलोकस्तिमिरे निधिर्विषमणिः पाते करालम्बनं [illegible] ।
दुःखव्याधिमहौषधं भवभयोद्भ्रान्ताशयाश्वासनं [illegible] हितसुहृद्धर्मः सतां बान्धवः ॥ क्षेमेन्द्रः ॥

अथ

॥ श्रीधर्मालोकमुखसूत्रम् ॥

श्रीपातंजलयोगसूत्रैरलंकृतम् ।

भाषाव्याख्यासमेतं च ।

प्रथमे संस्करणे १००० पुस्तकानि मुद्रितानि ।

भूमिका.

यह छोटासा भाषाका व्याख्यान सज्जन पुरुषोंकी भेंट करनेसे दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं एक तो योगविषयका साधारण बोध और दूसरे बुद्धधर्म और योगधर्मकी समानता । श्रीशाक्यमुनि बुद्धभगवान्‌ने सर्वज्ञताका साक्षात्कार करके असंख्येय प्राणियोंका उद्धार इसही योगधर्मके द्वारा किया है।और श्रीपतंजलि महर्षिनेभी अपने इसही योग धर्मका अनुशासन लिखकर जगत्‌का उपकार किया है इन दोनों महापुरुषोंके वचनोंका साधारण उपदेश संक्षेपसे अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार अनुवादकरके भाषा जाननेवाले पुरुषोंके निमित्त प्रकाशित किया जाता है । आशा है कि सज्जन पुरुष इसको पढ़कर अनुवादकको कृतार्थ करेंगे ॥ यद्यपि योगशास्त्रका पृथक्‌ही विस्तारके साथ क्रमसे व्याख्यान करना चाहिये था, किन्तु यह तो बहुत प्रसिद्ध है और धर्मालोकमुख सब पुरुषोंमें बहुत प्रसिद्ध नहीं है, इस लिये उस धर्मालोकमुखकोभी प्रसिद्ध करनेके लिये इस व्याख्यानमें क्रम तो केवल धर्मालोकमुखके एकसौ आठ सूत्रोंका रक्खा है और पातंजलयोगसूत्रके सब चारपादोंके एकसौ चौरानवे सूत्रोंकोभी योग्यतानुसार उन धर्मालोकमुखके सूत्रोंके साथ व्याख्यान किया है ॥ यद्यपि समाधि आदि चित्तकी अवस्थाओंका बोध विना अनुभवके पुरुषको होना कठिन है तोभी जिन पुरुषोंकी प्रीति ईश्वरके भजन पूजनमें श्रद्धापूर्वक है और मोक्षके मार्गकी कथाको जिन्होंने कुछ सुना है उनको तो अवश्यही कुछ बोध उत्पन्न हो जाता है । और फिर श्रद्धासे लेकर अभिषेकभूमि पर्यन्त धर्मके एकसौ आठ आलोकमुखोंका क्रमसे प्रकाश हो जाना कुछभी बड़ी बात नहीं है, क्यों कि एक श्रद्धाहीको पहले उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है फिर तो प्रकाश क्रमसे बढताही जाता है । इसलिये सज्जनोंसे प्रार्थना यह है कि इस भाषाव्याख्याको प्रेमसे पढ़ें और जो इसमें अशुद्धि हो उसे शुद्ध करलें ॥

खुन्नीलाल शास्त्री. बरेली ॥

ॐ नमो नारायणाय । श्रद्धा पहला धर्मालोकमुख है इसका फल यह है कि चित्तका आशय नहीं टूटता है। जो पुरुष जिस कर्मके करनेमें श्रद्धा कर लेता है वह पुरुष उस कर्मको अवश्य पूरा कर लेता है जिसकी श्रद्धा जिस काममें हो जाती है वह उस कामके करनेकी इच्छाको नहीं तोड़ सकता है ॥ धर्मका लक्षण—अहिंसा और परोपकार है। जो पुरुष किसीकी हिंसा नहीं करता है वह धार्मिक कहाता है अथवा जो पुरुष सबका उपकार करनेमें तत्पर होता है उसको धार्मिक कहते हैं । सब जीवोंको समान आत्मा जानकर जो किसी जीवको नहीं सताता है वह उत्तम धर्मको इकट्ठा कर लेता है और जो सब जीवोंको समान आत्मा जानकर सब जीवोंके साथ समान उपकार करता है वह पुरुष औरभी अधिक उत्तम धर्मको इकट्ठा कर लेता

ध० ॥ ॐ श्रद्धा धर्मालोकमुखमभेद्याशयतायै संवर्तते ॥ १ ॥

है। उस धर्मका फल यह होता है कि उस पुरुषको धर्मचक्षुः (धर्मका नेत्र) प्राप्त हो जाता है। जिससे वह पुरुष कर्तव्य और अकर्तव्य कर्मोंमें विवेक कर सकता है और नित्य और अनित्य और सुख और दुःखको यथावत् जान लेता है। सब कर्मोंको यथावत् जानकर अत्यन्त सुखकी प्राप्तिका उपाय करता है और फिर क्रमसे प्रज्ञाचक्षुः दिव्यचक्षुः और सर्वज्ञताचक्षुःको पाकर सुखसे सदाके लिये मुक्त होकर मुक्तलोकमें वास करता है । इस धर्मके आलोक अर्थात् प्रकाशको जो साधन उत्पन्न करते हैं उनको धर्मालोक कहते हैं उन धर्मालोकोंमें जो मुख अर्थात् श्रेष्ठ हैं उनको धर्मालोकमुख कहते हैं। यह ललितविस्तरमें एक सौ आठ लिखे हैं और बुद्ध भगवान्ने इनका उपदेश इसलिये किया है कि मनुष्य इनको जानकर पूर्ण रीतिसे इनका अनुष्ठान करें और धर्मके फल सर्वज्ञताको पालें। धर्मकी व्याख्या करनेके लिये दो प्रकारसे व्याख्यान करते हैं प्रथम पापको छोड़ना और दूसरे पुण्यका आचरण करना इसलिये इसही सूत्रकी व्याख्यामें पहिले पापकी

व्याख्या और फिर पुण्यकी व्याख्या और पीछेसे श्रद्धाकी व्याख्या लिखते हैं ॥ १ ॥ **पापकी व्याख्या** ॥ पापकी व्याख्यामें पातंजलयोगसूत्रके दूसरे पादके ३४ सूत्रकी व्याख्या करेंगे । पुरुष सर्वथा पापोंको करता हुआभी अपने आपको शुद्ध और पुण्यात्मा जानता है, सब प्रकारके अहंकारों और ममकारोंमें फंसा हुआभी अपने आपको शुद्धही देखता है,सब प्रकारके हिंसा आदि प्रबल पापोंमें फंसा हुआभी अपने आपको शुद्धही मानता है । शास्त्रोंपर दोष लगाता है, मंत्रोंपर दोष लगाता है, साधनोंपर दोष लगाता है, सन्तोंपर दोष लगाता है, ब्राह्मणोंपर दोष लगाता है, इस प्रकार औरभी अत्यन्त पापकर्मोंको इकट्ठा करता हुआ घोर नरकोंका दर्शन करता है, महादुःखोंको भोगता है, बारबार जन्मता है, मरता है और संसारसे निकलनेके मार्गको नहीं जानता है ॥ इस प्रकार पापका बल बढ़ते २ पुरुषको ऐसे घेर लेता है जैसे कोई पापी व्याध पक्षीको फंदोंमें

यो० ॥ वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका
मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ २ ॥ ३४ ॥

घेर लेता है और जैसे कोई पापी म्लेच्छ छलसे मछलियोंको जालमें घेर लेता है । पाप देखनेमें तो दिखाई देता नहीं है किन्तु पल पलमें पुरुष पापका आचरण करता है । पुरुष जानता है, कि मैं धनाढ्य हूं, मैं विद्वान् हूं, मैं रूपवान् हूं, मैं कुशल हूं, मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं । इसी प्रकार जानता है कि यह मेरा धन है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा भाई है, ये मेरे माता पिता हैं । इत्यादि प्रकारसे अज्ञानके संकल्पोंको उत्पन्न करता हुआ नहीं जानता है कि पाप क्या है । हिंसा करता है, जीवोंको सताता है, मारता है, दुःखी करता है, काटता है, फाड़ता है, चमड़ा उतारता है, मांसको निकालता है, [illegible]को पहनता है, मांसको खाता है, ऐसा पाप आप करता है, दूसरोंसे कराता है, दूसरोंके किये हुएको देखकर प्रसन्न होता है,

क्रोधसे हिंसा करता है, लोभसे हिंसा करता है, मोहसे हिंसा करता है, अज्ञानसे हिंसा करता है, किसी देवताके लिये हिंसा करता है (देवताके लिये जो लोग बलि चढाते हैं वह हिंसा मोहकी हिंसा कहाती है), फिरभी हिंसाके भेद अनेक हैं कोई हिंसा छोटी कोई मध्यम और कोई बहुत बड़ी होती है। इस प्रकार प्राणियोंके अनेक भेद होनेसे अनेकानेक प्रकारकी हिंसा है। यह सब पहला पाप है। मनुस्मृतिके प्रायश्चित्त अध्यायको देखनेसे विदित होता है कि ब्राह्मणकी हत्या महापातक है और गौ आदिकी हिंसा पातक है। उस प्रायश्चित्त अध्यायको देखनेसे यह बात विदित हो जावेगी कि कितने पाप हैं और उनका क्या २ प्रायश्चित्त है। इसलिये विस्तारसे यदि देखना हो तो उस अध्यायको पढ़ना चाहिये ॥ दूसरा पाप यह है कि पुरुष मद पीता है, मदिरा पीता है, चरस पीता है, भंग पीता है, तमाखू पीता है, तमाखू खाता है, तमाखू सूंघता है, अफीम खाता है, अफीम पीता है, संखिया (विष) खाता है, ताड़ी पीता है। कोईभी वस्तु जो शरीरमें इन्द्रियोंमें चित्तमें प्रमाद उत्पन्न करे मद कहाती है। मदका पीना दूसरा पाप है इसी पापमें अभक्ष्य भोजनका करनाभी प्रविष्ट है। लहसन, प्याज, लसौड़ा, गूलर, गर्जुए इत्यादि अभक्ष्य भोजनोंको खानाभी पाप है। सिरका पीनाभी पाप है ॥ तीसरा पाप चोरी करना है। यदि कोई चोरी करता है, किसीके धनको छीनता है, किसीके धनको ठग लेता है, अधर्मसे, छलसे, कपटसे फुसलाकर मनाकरभी जो धन ठगा जावे चोरी कहाती है। किसीकोभी विना दी हुई वस्तुको ले लेना तीसरा पाप है ॥ चौथा पाप मिथ्या मैथुन करना है। दूसरोंकी स्त्रियोंसे मैथुन करना पाप है, दूसरोंकी स्त्रियोंको बुरी दृष्टिसे देखनाभी पाप है, शरीरको मिथ्या शृंगार करनाभी पाप है, नंगा हो जाना और नंगा रहनाभी पाप है, अपनी स्त्रीसेभी सुखकी आशासे मैथुन करना पाप है, गृहस्थकोभी संतानके निमित्त ऋतुमें गर्भाधान करनेको छोडकर मैथुन सर्वथा पाप है, ब्रह्म-

चारीको मैथुन सर्वथा निषिद्ध पाप है, ब्रह्मचारीको शरीर शृंगार करनाभी पाप है ॥ यह चार पाप शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं। अगले चार पाप वाणीसे सम्बन्ध रखते हैं। औरभी अगले तीन पाप मनसे संबन्ध रखते हैं ॥ झूंठ बोलना पांचवां पाप हैं, जो भाव मनमें हो वैसा न कहना झूंठ है, किसीको दुःख पहुंचानेवाला वचनभी झूंठ है, किसीको भ्रांतिमें डालनेवाला वचनभी झूंठ है, किसीको छलनेके लिये गोलमोल बात कहनाभी झूंठ है ॥ किसी बातको कठोर वचनमें कहना छठा पाप है। एकही बात मधुरवचनमेंभी कही जा सकती है और कठोर वचनमेंभी, जैसे जीम लीजिये, यह तो मधुर वचन है, निगल लो, ठूंस लो यह कठोर वचन है। कठोर वचनका बोलना पाप है, गाली देनाभी पाप है ॥ किसीके दोषोंको दूसरेके संमुख प्रकाश करना सातवां पाप है। इसको पिशुन वचन (चुगली खाना) कहते हैं, चाहे किसीने कुछ पाप किया हो परन्तु कोई दूसरा पुरुष उसकी यदि चुगली खा दे तो पाप है ॥ अवकाश कालमें बैठे हुए वृथा बकवाद करना वा झूंठी कथा कहानी पढ़ना यह आठवां पाप है। किसीसे हँसी करना मखौल करना भी पाप है, निष्प्रयोजन बात करनाभी पाप है ॥ मनमें हिंसा करनेका विचार करना नवां पाप है। किसीसे वैर विरोध करना शत्रुता करना ईर्ष्या करनाभी पाप है। काम क्रोध मोहको मनमें उत्पन्न करनाभी यही पाप है ॥ मनमें किसीके धनको अधर्मसे ले लेनेकी इच्छाभी करना दशवां पाप है। लोभ करना दीनता करना कंजूसी करनाभी पाप है ॥ ईश्वरमें नास्तिक बुद्धि रखना ग्यारहवां पाप है। ईश्वरको न मानना, आत्मा को न मानना, कर्मको न मानना, कर्मके फलको न माननाभी पाप है, मिथ्या धर्मको माननाभी पाप है, मिथ्या मार्गमें जानाभी पाप है जो ब्रह्मयज्ञ आदि पांच महायज्ञ करनेको लिखे हैं उनका न करनाभी पाप है (ईश्वरके भजन संध्या उपासनाका नाम ब्रह्मयज्ञ है, अग्निहोत्रका नाम देवयज्ञ है, भूतप्रेत और कृमि, कुत्ता,

काक आदि जीवोंको अन्न निकालकर देना बलिवैश्वयज्ञ कहाता है, अतिथि और भिक्षुकोंको भिक्षा देना अतिथियज्ञ कहाता है, पितरोंके नामपर श्राद्ध और तर्पण करना और मातापिताको भोजन जिमाना ये दोनों पितृयज्ञ कहाते हैं) । ईश्वरकी भक्ति न करनाभी पाप है, आप इन पापकर्मोंको करनाभी पाप है दूसरोंसे इन पापकर्मोंको करानाभी पाप है, दूसरोंके किये हुए पापकर्मोंको देखकर वा सुनकर प्रसन्न होनाभी पाप है । धर्मसे द्वेष करनाभी पाप है, धार्मिक पुरुषोंसे द्वेष करनाभी पाप है ॥ इस प्रकारके पापकर्मोंके करनेसे पुरुष दुःख उठाता है, चौरासीमें घूमता है, जन्मता है, मरता है, नरकोंमें गिरता है । जो पुरुष चाहता है कि मैं पापोंसे बचूं और नरकोंमें न गिरूं और दुःखोंको न भोगूं उसको चाहिये कि इन पापोंको और उन पापोंको जिनको महापुरुष पाप जानते हैं छोड़े, त्याग करे, मनसे त्याग करे, वाणीसे त्याग करे, शरीरसे त्याग करे, सर्वथा त्याग

यो० ॥ तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ २ । ३० ॥

यो० ॥ शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ २ । ३२ ॥

करे, सर्वदा त्याग करे ॥ (पाप और पुण्यका लक्षण विष्णुपुराण, शुक्रनीति, मनुस्मृति और चरक ग्रन्थोंमें सद्वृत्तके नामसे लिखा है । वह सब यहां विस्तार हो जानेके कारणसे नहीं लिखा है । संक्षेपसे यह ग्यारह लक्षण जो सब ग्रन्थोंमें लिखे हैं और अष्टसाहस्रिकामेंभी लिखे हैं यहां कहे गये हैं) ॥ २ । ३४ ॥ पुण्यकी व्याख्या ॥ पुण्यके बलसे पुरुष सुखको भोगता है, उत्तम योनियोंमें उत्पन्न होता है, स्वर्गको जाता है, देवता हो जाता है, बुद्ध हो जाता है, मुक्त हो जाता है, ईश्वरके लोकको पहुँच जाता है, सर्वकालके लिये बन्धनोंसे छूटकर ईश्वरके लोकमें वास करता है ॥ पीछे लिखे सब पापोंको न करना पुण्य कहाता है, हिंसा न करना अहिंसा है, झूंठ न बोलना सत्य है, चोरी न करना अस्तेय है, मैथुन न करना ब्रह्मचर्य है, विषयोंमें

प्रवृत्त न होना और वृथा सामग्रीको इकट्ठा न करना अपरिग्रह है ॥ २ । ३० ॥ शरीरको शुद्ध पवित्र रखना पुण्य कहाता है, वाणीको शुद्ध पवित्र रखना पुण्य कहाता है। मनको शुद्ध पवित्र रखना पुण्य कहाता है, शरीरकी शुद्धि मिट्टी जलसे और शुद्ध पवित्र भोजन करनेसे होती है, वाणीकी शुद्धि सत्य बोलनेसे और मनकी शुद्धि ज्ञानसे होती है ॥ संतोष करना पुण्य कहाता है। जितना भोजन वस्त्र धर्मपूर्वक थोड़ासा उद्योग करनेसे मिल जावे उतनेमें प्रसन्न होना संतोष कहाता है॥ तप करना पुण्य कहाता है । बैठे रहना, खड़े रहना, शीत उष्णको सहना, भूख प्यासको मारना तप कहाता है । चान्द्रायणव्रत, पराकक्रच्छ्र, अतिकृच्छ्र प्राजापत्य आदि व्रतोंका करनाभी तप है, (मनुस्मृतिके एकादश अध्यायमें इन व्रतोंका वर्णन इस प्रकार लिखा है । शुक्लपक्षकी पर्वाको एक ग्रास भोजन करे फिर द्वितीयाको दो ग्रास इसी प्रकार एक २ बढ़ाकर पौर्णमासीको १५ ग्रास भोजन करे फिर एक २ ग्रास घटावे और अमावास्याको कुछ भोजन न करे तो यह एक मासका चान्द्रायण व्रत कहाता है । अथवा कृष्णपक्षसे प्रारम्भ करे तो पर्वाको चौदह ग्रास भोजन करे और फिर एक २ ग्रास घटावे और अमावास्याको कुछ भोजन न करे फिर शुक्ल पक्षकी पर्वासे एक २ ग्रास बढ़ावे पौर्णमासीको पन्द्रह ग्रास भोजन करे इस प्रकारकाभी एक मासका चान्द्रायणव्रत हुआ। अथवा आठ२ ग्रास प्रतिदिन मध्याह्न कालमें भोजन करे तोभी एक मासमें २४० ग्रास खाकर चान्द्रायणव्रत कहाता है। जो पुरुष चान्द्रायण व्रतको करता है उसके पाप नष्ट होकर पुण्यका उदय होता है और पुण्यके प्रतापसे उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ इसी प्रकार जो बारह दिन कुछभी भोजन न करे, शुद्धतासे रहकर भजनमें मनको लगावे तो इस व्रतका नाम पराकक्रच्छ्र होता है ॥ तीन दिनतक प्रातःकालको एक २ ग्रास प्रतिदिन खावे फिर तीन दिनतक सायंकालको एक २ ग्रास प्रतिदिन खावे, फिर तीन दिनतक किसीसे मांगे

नहीं और जो विना मांगे कोई दे दे तो एक २ ग्रास प्रतिदिन खावे और जो कोई न देवे तो न खावे, और फिर तीन दिन कुछभी न खावे तो यह बारह दिनका व्रत होता है इसका नाम अतिकृच्छ्र है ॥ तीन दिन प्रातःकालको भोजन करे और तीन दिन सायंकालको करे और तीन दिन मांगे नहीं जो कोई विना मांगे दे दे तो खावे नहीं तो नहीं खावे और फिर तीन दिन कुछ न खावे तो यह बारह दिनका व्रत होता है और इसका नाम प्राजापत्यव्रत है ॥ ये सब व्रत पापको दूर करते हैं इसलिये इनका करना पुण्य कहाता है) ॥ योगसूत्रमें महाव्रतका लक्षण यह कहा है । हिंसा आदि वितर्क जो किसी जीवके विषयमें न होवें किसी देशमें उत्पन्न न होवें किसी कालमें न होवें और किसीकेभी निमित्त न होवें अर्थात् सर्व जीवोंकी अहिंसा सर्व देशमें सर्व कालमें और सर्व पुरुषोंके अर्थ जो अहिंसा व्रत किया जाता है तो इसको महाव्रत कहते हैं ॥ २ । ३१ ॥ प्राणायामका करनाभी उत्तम तप है । इसका वर्णन आगे जाकर करेंगे ॥ उपासकदशा ग्रन्थको

यो० ॥ जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ २ ॥ ३१ ॥

देखनेसे विदित होता है कि प्रायोपवेशनभी व्रत है अर्थात् सब वस्तुका त्याग करके बैठ जाना फिर न भोजन करना और न जलपान करना । इसकीभी दो विधि हैं एक तो किसी इष्ट वस्तुकी सिद्धिके लिये किया जाता है और यह व्रत इष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो जानेपर समाप्त हो जाता है । दूसरा वह है जो शरीर त्यागनेके निमित्त किया जाता है ॥ मनुस्मृतिमेंभी इस व्रतकी चर्चा है और बुद्ध भगवान्नेंभी इस व्रतका अनुष्ठान किया है । इसकी चर्चा ललितविस्तरमें लिखी है ॥ ईश्वरका स्मरण करना, मंत्रोंको जपना, वेदोंको पढ़ना स्वाध्याय कहाता है । स्वाध्याय करनाभी पुण्य है ॥ सारे धर्मकर्मोंका आचरण निष्काम होकर करना, फलकी इच्छा न रखना, अथवा ईश्वरके अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान कहाता है । ईश्वर प्रणिधानका करनाभी पुण्य कहाता

है ॥ २। ३२ ॥ समयको धर्मके ग्रन्थोंके पढ़नेमें लगाना, जपमें लगाना, स्वाध्यायमें लगाना पुण्य कहाता है ॥ ईश्वरकी मूर्त्ति स्थापन करके धूप दीप नैवेद्य घंटा आदिसे पूजना पुण्यकर्म कहाता है । बुद्ध पुरुषोंकी मूर्ति स्थापन करके धूप दीप नैवेद्य घंटा आदिसे पूजना पुण्यकर्म कहाता है । यज्ञ, महायज्ञ, अश्वमेध, गोमेध आदि यज्ञ करना पुण्यकर्म कहाता है । जिस यज्ञमें घोड़ेका दान किया जावे उसे अश्वमेधयज्ञ कहते हैं । जिस यज्ञमें गौका दान किया जावे उसे गोमेध यज्ञ कहते हैं । गंगास्नान करना पुण्य कहाता है । तीर्थोंका दर्शन करनाभी पुण्य कहाता है । आप धर्मका आचरण करना और दूसरे प्राणियोंको उपदेश करना पुण्य कहाता है । सत्पुरुषोंका संग करना, सत्पुरुषोंकी सेवा करना, दुष्ट पुरुषोंका संग छोड़ना, नाना प्रकारके व्रत करना, उपवास करना अर्थात् भोजन न करना, एकान्तमें बैठकर मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करना, विषयोंको त्याग करना, विषयोंसे मनको हटाना, सब प्राणियोंको अभय दान देना, अन्नदान देना, जल दान देना, विद्या दान देना, धर्म दान देना इत्यादि बहुत प्रकारका पुण्य कर्म कहाता है ॥ पुण्यकर्म करनेका अभ्यास करना चाहिये । जो पुरुष पुण्यकर्मका अभ्यास करता है तो पुण्यके बलसे वह पुरुष धर्मचक्षुःको प्राप्त करता है । धर्मचक्षुःको पाकर सर्वज्ञताकी प्राप्तिके साधनमें चलनेकी योग्यता हो जाती है ॥ **श्रद्धाकी व्याख्या ॥** श्रद्धा धर्मका द्वार है । जो पुरुष श्रद्धाको उत्पन्न करता है वह धर्मको पाता है । विना श्रद्धाके धर्मकी प्राप्ति असंभव है । जैसे संसारमें सब कर्मोंका आरम्भ विना श्रद्धाके नहीं होता है, जिस २ पुरुषकी जिस २ में श्रद्धा होती है उस २ कर्ममें वह २ पुरुष प्रवृत्त होता है, इसी प्रकार जिसकी श्रद्धा धर्ममें हो जाती है वह पुरुष धर्मकी प्राप्तिके लिये यत्न करता है ॥ जैसे कोई पुरुष किसी पुष्पवाटिकामें पहुँचे और वहां प्रपौण्डरीक (गुलाब)के फूलको देखकर मालीसे कहे कि ऐसा गुलाबका पेड़ मेरे घरमें हो जावे ऐसा उपाय तुम

बताओ। माली कहता है, अच्छा, मंगसरका उत्तम मास है, लेओ तुम दो टहनी इस पेड़की काटकर ले जाओ, अपने घरमें पृथिवीको खोदकर मिट्टीमें इनको गाड़ देना, प्रतिदिन पानी सींचना, थोडे दिनोंमें यह टहनी पेड़ बन जावेंगी, और फिर फूलोंसे शोभायमान दिखाई देवेंगी। यदि उस पुरुषने उस समय मालीके वचनपर श्रद्धा की और जैसे मालीने कहा वैसेही किया तो थोड़ेही कालमें दो २ पत्ते उन टहनियोंमें फूट आते हैं और वह पत्ते पुरुषकी श्रद्धाको बढ़ाते हैं और मालीके वचनका निश्चय कराते हैं, फिर शनैः शनैः वह टहनियां वृक्ष बन जाती हैं, चैत्रके मासमेंही फूलने लगती हैं। इस प्रकार उस पुरुषके घरमें गुलाबके पेड़ हो जाते हैं। जो वह पुरुष मालीके वचनमें श्रद्धा न करे और अपनी अल्पज्ञताबुद्धिसे विचार करने लगे कि यह टहनियां विना जड़की हैं लगानेसे सूख जावेंगी और इन टहनियोंका रंग और है और पुष्पोंका रंग और हैं भला ऐसे सुन्दर रंगके फूल इन टहनियोंमेंसे कैसे निकल सकते हैं, इन टहनियोंको चीरे, फाड़े, जलावे, राख करे किसी प्रकारसेभी तत्त्वोंको अलग करे गुलाबके फूलका पता नहीं चलता और न उन टहनियोंसे अन्यत्र और किसी वस्तुमेंसे गुलाबका निकलना संभव दीखता है। तो इस विचारमें पड़ा हुआ चाहे जितने कालतकभी तर्क करता रहे किन्तु गुलाबके फूलको नहीं पा सकता है। सब वस्तुओंके जाननेकी विधि अलग २ है, जिसकी जो विधि है वह वस्तु उस विधिसे जानी जाती है, जैसे रूप आंखसे देखा जाता है और शब्द कानसे सुना जाता है, कानसे रूप नहीं देखा जा सकता है और शब्द आंखसे सुननेमें नहीं आता है॥ इसी प्रकार जो पुरुष सर्वज्ञताके विषयमें श्रद्धा करताहै, सर्वज्ञ पुरुषके वचनमें श्रद्धा करता है, उसकी रीतिपर चलता है तो इसी शरीरमें सर्वज्ञताका साक्षात्कार हो जाता है जो सर्वज्ञता इस शरीरमें और किसी प्रकारसे देखनेमें नहीं आ सकती है और शरीरसे अन्यत्रभी और किसी वस्तुमें देखनेमें नहीं आ

सकती है सो विधिसे इसही शरीरमें दिखाई देती है ॥ जो पुरुष यह निश्चय कर लेता है कि मैं मूर्ख हूं वह विद्या सीखनेके लिये यत्न करता है, और जो पुरुष यह निश्चय कर लेता है कि मैं अल्पज्ञ हूं तो वह सर्वज्ञताके पानेके लिये यत्न करता है ॥ (देखो योगसूत्र) इसलिये श्रद्धाका काम यह है कि पुरुष यह निश्चय कर ले कि मैं अत्यन्त पापी हूं, अबतक पापके बंधनमें चला आता हूं और ईश्वर अत्यन्त शुद्ध है, पतितपावन है, पापियोंको पवित्र करता है, ऐसा जानकर अत्यन्त दीन होकर सच्चे भावसे ईश्वरकी शरणागत जावे, उसके संमुख हाथ जोड़े, मत्थेको रगड़े, रोवे, चिल्लावे, दीन दुःखी बने, प्रार्थना करे कि हे ईश्वर! हे पतितपावन! मुझपर दया कर मुझको ऐसा बल और बुद्धि दे कि मैं पापसे बच सकूं मैं जानता हुआभी पापसे अलग नहीं होता और पुण्यके द्वारमें घुसनेसे पाप मुझको रोक लेता है, यदि तू कृपा करे और मेरे पापको नाश करे तो

यो० ॥ ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १ ॥ २३ ॥

गीता ॥ स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ २ ॥ ४० ॥

मेरा प्रवेश पुण्य द्वारमें हो सकता है अन्यथा मैं असमर्थ हूं, अब मैं तेरी शरणागत हूं, जो तेरी इच्छा हो सो तू कर, कृपा कर, दया कर, जिसमें मेरा और सारे जगत्का हित हो ऐसी बुद्धि मुझको दे। इस प्रकार जो पुरुष ईश्वरके संमुख रो रोकर अपने किये हुए पापोंको क्षमा कराता है और आगेको पापसे बचता है, तो इस प्रकार पुण्यके प्रभावसे पापोंको नाश करता हुआ अवश्य ईश्वरकी प्राप्तिके साधनोंमें प्रवेश कर जाता है ॥ १ । २३ ॥ (देखो श्रीभगवद्गीताको) क्योंकि यह नियम है कि थोड़ाभी उजाला बहुतसे अंधेरेको दूर कर सकता है और बहुतसाभी अंधेरा थोड़ेसेभी उजालेको नहीं दूर कर सकता है। जैसे घोर अंधकारमेंभी दीपकका थोड़ासाभी प्रकाश बहुतसे अंधेरेको दूर कर देता है और वह सब अंधकारभी मिलकर उस थोड़ेसे

उजालेको नहीं नाश कर सकता है । इसी प्रकार थोडासाभी पुण्य बहुतसे पापको दूर कर देता है और बहुतसाभी पाप थोड़ेसेभी पुण्यको नाश नहीं कर सकता है ॥ श्रद्धाका यहभी काम है कि जो जो साधन शास्त्रोंमें लिखे हैं उन २ को सत्य जानकर उनकी रीतिसे अभ्यास प्रारम्भ करे और निरन्तर धीरजको धरे रहे, क्योंकि जबही श्रद्धा घटेगी तबही धीरज टूट जावेगा, धीरजके टूटनेसे सब साधन खंडित हो जावेगा श्रद्धाके द्वारा धृतिको वहांतक रखना चाहिये जहांतक कार्यसिद्धिके चिह्न दीखने लगें क्योंकि जब कुछ अनुभव हो जावेगा तब तो फिर श्रद्धा और धृति टूट नहीं सकती हैं ॥ इसीलिये पातंजलयोगसूत्रमें लिखा है श्रद्धा माताके समान योगीकी रक्षा करती है श्रद्धासे चित्त प्रसन्न रहता है और घबराता नहीं है, श्रद्धाही,

यो० ॥ श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ १ । २० ॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः । श्रद्धां भगस्य मूर्द्धनि वचसा वेदयामसि ॥ १ ॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः । प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे । एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते । श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि । श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

ऋ० मं० १० सू० १५१ ॥

वीर्य अर्थात् उत्साहको उत्पन्न करती है, उत्साहसे रात्रि दिवस कर्तव्य कर्मकी स्मृति बनी रहती है और रात्रि दिवस स्मृति अर्थात् ध्यान बंध जानेसे चित्त एकाग्र होकर समाधिको पा लेता है और समाधिसे प्रज्ञा अर्थात् शुद्ध बुद्धिका साक्षात्कार हो जाता है ॥ १ । २० ॥ इसीलिये ऋग्वेदमें श्रद्धासूक्तमें श्रद्धादेवताकी स्तुति की हुई है । देखो ऋग्वेदके दशममंडलका १५१ सूक्त ॥

श्रद्धासे अग्नि प्रज्वलित की जाती है और श्रद्धासे हविका होम किया जाता है अर्थात् यदि श्रद्धा होती है तो पुरुष किसी कर्मके करनेमें प्रवृत्त होता है विना श्रद्धाके किसी कर्ममें प्रवृत्ति नहीं होती है इसलिये सब ऐश्वर्यके ऊपर श्रद्धाको हम वेदवचनसे जानते हैं अर्थात् सब प्रकारके ऐश्वर्यकी प्राप्तिका मूल कारण श्रद्धा है ॥ १ ॥ हे श्रद्धे ! तुम देनेवाले पुरुषका कल्याण करो और देनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषकाभी तुम कल्याण करो। यज्ञशील भोज पुरुषोंमें तुम मेरा कल्याण उदय करो अथवा ब्रह्मभोज और यज्ञ करनेवाले पुरुषोंमें तुम मेरे कल्याणको उदित करो ॥ २ ॥ जिस प्रकार देवोंने उग्र असुरोंमे श्रद्धाको किया है अर्थात् जिस प्रकार उग्र असुरोंको जीतनेके लिये देवोंने श्रद्धापूर्वक उद्योग किया है उसी प्रकार यज्ञशीलभोज पुरुषोंमें हमारे श्रद्धापूर्वक उद्योगको उदय करो अर्थात् हम सबमें विशिष्ट होवें ऐसी श्रद्धा हममें उत्पन्न करो ॥ ३ ॥ वायुदेव रक्षा करता है जिन देवों की वे देवभी और यजमानभी श्रद्धाकी उपासना करते हैं हृदयकी आकूति अर्थात् मनके आभ्यंतरभावसे पुरुष श्रद्धाको पाते हैं और धनादि सुखोंकी प्राप्तिकोभी श्रद्धासेही पाते हैं। अर्थात् जो पुरुष श्रद्धासे उद्योग करते हैं वे पुरुष धन आदि वस्तुओंको पा लेते हैं ॥ ४ ॥ प्रातःकालभी हम श्रद्धाको आवाहन करते हैं और पूजन करते हैं और मध्याह्नकालमेंभी हम श्रद्धाको आवाहन करते है और पूजन करते हैं। और सायंकालमेंभी हम श्रद्धाको आवाहन करते हैं और पूजन करते हैं अर्थात् सब कालोंमें हम श्रद्धाकी उपासना करते हैं, हे श्रद्धे देवते ! तुम हममें श्रद्धा उत्पन्न करो अर्थात् हे श्रद्धादेवते ! हम तुमसे प्रार्थना करते हैं, तुम हमपर ऐसी कृपा करो कि हम धर्मविषयमें अत्यन्त श्रद्धालु हो जावें ॥ ५ ॥ १ ॥ ध० ॥ चित्तकी प्रसन्नताका नाम प्रसाद है, चित्त शुद्ध होनेसे चित्त प्रसन्न होता है इसलिये चित्तकी शुद्धिका नामभी प्रसाद है। यह प्रसाद धर्मालोकमुख है और मलिन चित्तकी शुद्धिको उत्पन्न करता है। यह प्रसाद क्रमसे चित्तमें बढ़ता है

जितना २ पुरुष पुण्यकर्मोंका साधन करता जाता है उतना २ ही चित्त शुद्ध होता जाता है और जितना २ चित्त शुद्ध होता जाता है उतनी २ चित्तकी मलिनता निकलती जाती है। जैसे प्रातःकालके समय ज्यों २ सूर्यके प्रकाशका उदय क्रम २ से होने लगता है त्यों २ अंधकार नष्ट होता जाता है, इसी प्रकार चित्तकी शुद्धि चित्तकी मलिनताको दूर करती है॥ चित्तमें रजस् तमस्का आवरण होनेसे चित्त अशुद्ध कहाता है और रजस् तमस्का आवरण दूर हो जानेसे चित्तको शुद्ध कहते हैं। वस्तुतः चित्त स्वभावसे शुद्ध है। जैसा कि अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिताके प्रथम परिवर्तमें लिखा है। चित्त स्वभावसे अचित्त अर्थात् विकार और विकल्पसे रहित है और प्रकृतिही चित्तकी ज्ञानस्वरूप है। चित्तमें अज्ञान नहीं है किन्तु वासनावशात् चित्त अशुद्ध

ध० ॥ प्रसादो धर्मालोकमुखमाविलचित्त प्रसादनतायै संवर्तते ॥ २ ॥

अ० ॥ तथाहि तच्चित्तमचित्तं प्रकृतिश्चित्तस्य प्रभास्वरा ॥ प्र० ॥

यो० ॥ निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ १ ॥ ४६ ॥ ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ १ ॥ ४७॥

ध० ॥ प्रामोद्यं धर्मालोकमुखं प्रसिद्ध्यै संवर्तते ॥ ३ ॥

भासता है, वह अशुद्धि पुण्यके उदयसे और ध्यानके अभ्याससे दूर हो जाती है। पातंजलयोगसूत्रमें लिखा है निर्विचार समाधिमें चित्त और बुद्धिके शुद्ध होनेपर चित्त और बुद्धिमें प्रसाद उत्पन्न हो जाता है। । १ । ४६ । और उस प्रसाददशामें बुद्धि शुद्ध और सत्यसंकल्पा होती है इसलिये उस बुद्धिका ऋतंभरा नाम है। १ । ४७ ॥ समाधिके वर्णनमें निर्विचार समाधिका वर्णन करेंगे ॥ २ ॥ ध० ॥ प्रामोद्य अर्थात् प्रमोद नाम धर्मालोकमुख जगत्में प्रसिद्धिको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषके चित्तमें प्रमोद अर्थात् हर्ष होता है, धर्मात्माओंको देखकर हर्षित होता है किसीसे ईर्ष्या नहीं करता है उस पुरुषकी जगत्में प्रसिद्धि हो जाती

है । यद्यपि विरक्त पुरुषको संसारकी प्रसिद्धिसे कुछ लाभ नहीं है तोभी संसारका लाभ तो अवश्य है क्योंकि प्रसिद्ध पुरुषके पास साधारण पुरुष ज्ञान सीखनेको जाते हैं और ज्ञान सीखकर महात्मा बन जाते हैं । इसलिये संसारमें प्रसिद्धि होना संसारका उपकारी होनेसे ईर्ष्याकी निवृत्ति चित्तका सुधार करनेमें सहायक है ॥३॥ ध० ॥ सब पुरुषोंसे समान प्रेम करनेका नाम प्रीति है । यह धर्मालोकमुखभी चित्तकी शुद्धिको उत्पन्न करता है । जब चित्तमें सब जीवोंसे समान प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो पुरुषके चित्तका द्वेष निकल जाता है और स्वार्थताभी दूर हो जाती है, परोपकारमें प्रवृत्ति होती है इसप्रकार पुरुष जितना २ परोपकारमें प्रवृत्त होता है उतना २ ही शुद्ध धर्मका प्रकाश उदय होता है और चित्तमेंसे द्वेष घृणा स्वार्थता छल और

ध०॥ प्रीतिर्धर्मालोकमुखं चित्तविशुद्ध्यै संवर्तते ॥ ४ ॥

ध०॥ कायसंवरोधर्मालोकमुखं त्रिकायपरिशुद्ध्यै संवर्तते ॥ ५ ॥

ध०॥ वाक्संवरो धर्मालोकमुखं चतुर्वाग्दोषपरिवर्जनतायै संवर्तते ॥ ६ ॥

कपट आदि दोष निकलकर उदारता आती चली जाती है ॥ ४ ॥ ध० ॥ अब तीन संवरोंको कहते है ॥ काय अर्थात् शरीरकी शुद्धिका नाम कायसंवर है । कायसंवर[1] धर्मालोकमुख शरीरके तीन दोषोंको दूर करके शरीरकी शुद्धिको उत्पन्न करता है शरीरके तीन दोषोंकी चर्चा पापकी व्याख्यामें कर चुके हैं हिंसा करना चोरी करना मैथुन करना यह शरीरके तीन दोष कहाते हैं ॥ ५ ॥ ध० ॥ वाणीकी शुद्धिका नाम वाक्संवर है । वाक्संवर धर्मालोकमुख वाणीके चार दोषोंके परिवर्जन अर्थात् निवृत्तिको उत्पन्न करता है अर्थात् वाक्संवरसे वाणीके चार दोष दूर हो जाते हैं । असत्य बोलना परुषवचन अर्थात् कठोर वचन कहना

१ तत्वार्थ सूत्रमें लिखा है कि आश्रवोंके निरोधका नाम संवर है । वासनाका नाम आश्रव है । अर्थात् शरीरसे नवीन अशुद्ध कर्मोंकी गतिको रोकना कायसंवर है । इसी प्रकार वाक्संवर और मनःसंवरको जानना चाहिये ॥

पिशुन वचन अर्थात् चुगली खाना वृथा वचन अर्थात् वृथा निष्प्रयोजन बकवाद करना ये चार वाणीके

ध० ॥ **मनःसंवरो धर्मालोकमुखमभिध्याव्यापादमिथ्यादृष्टिप्रहाणाय संवर्तते ॥ ७ ॥**

दोष कहलाते हैं, इनकी चर्चा पापकी व्याख्यामें कर चुके हैं[1] ॥ ६ ॥ ध० ॥ मनकी शुद्धिका नाम मनः-[2]

---

१ ललितविस्तरमें वाणीकी आठ शुद्धि वर्णनकी हैं। १ यथावादितथाकारिता, अर्थात् जैसा कहना वैसाही करना। २ आदेयवचनता अर्थात् दूसरोंके स्वीकार करनेके योग्य वचनको बोलना। ३ ग्राह्यवचनता, अर्थात् दूसरोंके ग्रहण करनेके योग्य वचनको बोलना। ४ श्लक्ष्णमधुरवचनता, अर्थात् ऐसा वचन बोलना जो कठोर न होवे और मधुर होवे। ५ कलविंकरुतस्वरता, अर्थात् कलविंक पक्षीके समान उत्तम स्वरसे बोलना। ६ ब्रह्मस्वरता, अर्थात् वेदोंके स्वरके समान स्वरसे बोलना अथवा ब्रह्माके स्वरके समान स्वरसे बोलना। ७ सिंहघोषाभिगर्जितस्वरता, अर्थात् सिंहघोषके गर्जितके समान स्वरसे बोलना। ८ बुद्धस्वरता अर्थात् बुद्ध भगवान्‌के स्वरके समान स्वरसे बोलना।

२ ललितविस्तरमें आठ चित्तकी निर्मलता वर्णन की हैं। १ मैत्री, अर्थात् सब जीवोंसे मित्रभाव करना। २ करुणा अर्थात् दुःखित जीवोंपर दया करना। ३ मुदिता अर्थात् पुण्यात्मा जीवोंको देखकर हर्षित होना। ४ उपेक्षा, अर्थात् पापी जीवोंको देखकर उनसे राग द्वेष न करना। ५ चार ध्यान, यह चार ध्यान इस प्रकारसे लिखे हैं। विषयभोगोंके संकल्प और पापकर्मोंके संकल्पोंसे रहित चित्त होवे और सवितर्क और सविचार समापत्तिमें चित्त एकाग्र होवे और विवेकपूर्वक प्रीतिका सुख जिस चित्तमें होवे तो वह चित्त प्रथम ध्यानमें युक्त कहाता है। सवितर्क और सविचार समापत्तिसे निर्वितर्क और निर्विचार समापत्तिमें चित्त पहुंचे और अध्यात्म अर्थात् अन्तःकरण प्रसन्न होवे और समाधिपूर्वक प्रीतिका सुख जिस चित्तमें होवे तो वह चित्त द्वितीय ध्यानमें युक्त कहाता है। जब चित्तमें प्रीतिकाभी अभाव हो जावे, स्मृति और उपेक्षा शुद्ध होवे और संप्रज्ञात समाधिमें चित्त मग्न होवे और शरीरसे सुखका अनुभव होवे तो ऐसे तृतीय ध्यानको निष्प्रीतिक ध्यान कहते हैं। जब सुख और दुःख दोनोंकी हानि अर्थात् निवृत्ति हो जावे और चित्तमें सौमनस्य और दौर्मनस्य दोनों अस्त हो जावें तो ऐसे चौथे ध्यानको अदुःखासुख और उपेक्षास्मृतिविशुद्ध ध्यान कहते हैं क्यों कि इस ध्यानमें सुखदुःखआदि सब पदार्थोंसे

संवर है। मनःसंवर धर्मालोकमुख मनकी अभिध्या व्यापाद और मिथ्यादृष्टिकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है, अर्थात् मनःसंवरसे मनकी अभिध्या व्यापाद और मिथ्यादृष्टि दूर हो जाते हैं। दूसरेके धनादि सामग्रीको ले लेनेकी इच्छाको अभिध्या कहते हैं, दूसरे पुरुषोंसे द्वेष और द्रोह करनेका नाम व्यापाद है, नास्तिक बुद्धिका नाम मिथ्यादृष्टि है, इन तीनोंकी चर्चा पापकी व्याख्यामें कर चुके हैं। अमरकोशमें मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता यह पाठ पढ़ा है अर्थात् मिथ्यादृष्टि और नास्तिकबुद्धिका एकही अर्थ है ॥ ७ ॥ ध० ॥ बुद्धका

ध० ॥ बुद्धानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं दर्शनविशुद्ध्यै संवर्तते ॥ ८ ॥

अर्थ ईश्वर है और बुद्धका अर्थ मुक्तस्वरूप सर्वज्ञ योगी है (विशेप व्याख्या इसकी आगे लिखते हैं)। अनुस्मृतिका अर्थ चित्तमें स्मरण रखनेका है। इस प्रकारसे ईश्वरका स्मरण रखना यह धर्मालोकमुख है और दर्शनकी विशुद्धिको उत्पन्न करता है अर्थात् जो पुरुष चित्तमें ईश्वरका स्मरण रखता है वह शुद्ध शास्त्रको प्राप्त होता है अर्थात् आस्तिक होता है नास्तिक नहीं होता है। और जो सर्वज्ञ योगीका चित्तमें स्मरण रखता है वह शुद्ध दर्शन अर्थात् आस्तिक शास्त्र अर्थात् सर्वज्ञताके शास्त्रको स्वीकार करता है।

उपेक्षा हो जाती है और स्मृति अत्यन्त शुद्ध होती है। ६ चार आरूप्यसमापत्ति, यह चारों सवितर्क आदि समापत्ति विस्तारसे आगे वर्णन की जावेंगी। ७ पांच अभिज्ञा, सिद्धिको अभिज्ञा कहते हैं। अमरकोशकी माहेश्वरीटीकामें छः अभिज्ञा इसप्रकार लिखी हैं। दिव्यचक्षुः, दिव्यश्रोत्र, परचित्तज्ञान, पूर्वनिवासानुस्मृति, आत्मज्ञान, आकाशगमन, कायव्यूहादि नानासिद्धि। स्वयंभूपुराणमें पांच अभिज्ञा इस प्रकार लिखी हैं। १ दिव्यचक्षुः अर्थात् दिव्यनेत्र। २ दिव्यश्रोत्र अर्थात दिव्यश्रवणशक्ति। ३ परचित्तज्ञान अर्थात् दूसरोंके चित्तका ज्ञान। ४ पूर्वनिवासानुस्मृति अर्थात् पूर्व जन्मोंका स्मरण होना। कायव्यूहादिसिद्धि अर्थात् आकाशगमन आदि नानाप्रकारकी सिद्धि। ८ सर्ववासनानुसंधिसमुद्घाट, अर्थात सब वासनाओंकीपूर्णतासे निवृत्ति हो जाना ॥

सर्वज्ञताके प्रतिपादन करनेवाले योगदर्शनको मानकर निश्चय करके सर्वज्ञताके साधनमें प्रवृत्त होकर सर्वज्ञ होकर सब सर्वज्ञ योगियों और ईश्वरके दर्शनको करके सर्व कालके लिये मुक्त हो जाता है ॥ बुद्धकी व्याख्या करनेके लिये पहले अल्पज्ञताकी व्याख्या करके तब सर्वज्ञताकी व्याख्या करेंगे ॥ अल्पज्ञताकी व्याख्या ॥ आत्मा मनस् इंद्रिय और पदार्थके संयोगसे सब प्रकारके पदार्थोंका बोध संग और सुख दुःख उत्पन्न होता है। नेत्र श्रोत्र नासिका जिह्वा और त्वचा यह पांच इन्द्रिय बुद्धीन्द्रिय कहाती हैं। पुरुष आंखसे देखता है कानसे सुनता है नाकसे सूंघता है जीभसे चखता है त्वचासे छूता है। देखकर सुनकर सूंघकर चखकर छूकर जिस विषयको अपने अनुकूल जानता है उसको लेनेकी इच्छा करता है और जिसको अपने प्रतिकूल जानता है उसको छोड़नेकी इच्छा करता है। जिस वस्तुको लेनेकी इच्छा करता है यदि वह वस्तु मिल जावे तो सुखी होता है जो वह वस्तु न मिले तो दुःखी होता है। इसी प्रकार जिस वस्तुको छोड़नेकी इच्छा करता है यदि वह वस्तु छूट जावे तो सुखी होता है और जो वह वस्तु न छूटे तो दुःखी होता है। इस प्रकार सुख दुःखको मनसे अनुभव करता हुआ इच्छा द्वेषरूपी तृष्णाको उत्पन्न करता है और उस तृष्णाको उत्पन्न करके आपही उसके बंधनमें अपनेको बांधता है क्योंकि राग और द्वेषसे उन २ कर्मोंको यह करता है जिससे उन उन कर्मोंको करता हुआ उन २ कर्मोंके विपाक अर्थात् फलसे संयुक्त होता हुआ वासना भावना आशयको दृढ करके उसके अनुकूल चौरासी लाख योनियोंमें किसी न किसी योनिरूप शरीरको ग्रहण करताही है। जिस २ शरीरमें वसता हुआ यह पुरुष व्याधि जरा मृत्यु और विपत्तिसे रहित न होकर अत्यन्त दुःखरूप संसारमें घूमता है। और कभी अपनेको स्वस्थ और कभी रोगी जानता है, कभी अपनेको युवा और कभी बूढा जानता है, कभी अपनेको जीता और कभी मरता हुआ जानता

है, कभी अपनेको धनादिसे संपन्न धनाढ्य और कभी धनादिसे विपन्न कंगाल जानता है॥ जो कुछ यह पुरुष आंखसे देखता है वह कितना अल्प है यह तो क्या कहा जाय यही कहनेमें आ सकता है कि वह अल्प क्या सर्वथा सब ब्रह्माण्डके संमुख न होनेकेही बराबर है जैसे सूर्यके संमुख पतंगकी चमक न होनेके बराबरही है। इस प्रकार इसको विचार सकते हैं॥ सांख्यकारिकामें लिखा है। यह पुरुष आंखसे अत्यन्त दूरकी वस्तुको नहीं देख सकता है जैसे बरेलीमें स्थित हुआ कलकत्तेको। यह पुरुष आंखसे अत्यन्त समीपकी वस्तुको नहीं देख सकता है जैसे आंखमें लगे सुरमेको। आंखमें विकार आजानेसे यह पुरुष आंखसे नहीं देख सकता है जैसे अंधा पुरुष। मनके स्थित न रहनेसेभी यह पुरुष आंखसे नहीं देख सकता है जैसे कोई पुरुष किसी कार्यमें अत्यन्त आसक्त बैठा हो वह पाससे निकलते हुए पदार्थकोभी नहीं देखता

सां०का०॥ अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च॥ ७॥

है। यह पुरुष आंखसे अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुको नहीं देखता है जैसे सूक्ष्म कीट और परिमाणुओंको। यह पुरुष आंखसे अत्यन्त महत् वस्तुकोभी नहीं देखता है जैसे सकल पृथ्वीको। यह पुरुष आंखसे व्यवहित वस्तुको नहीं देखता है जैसे भीतकी ओटमें स्थित किसी वस्तुको। यह पुरुष आंखसे उस वस्तुको नहीं देखता है जो एक वस्तु दूसरीसे ढक जावे जैसे सूर्यके तेजसे अभिभूत तेजस्वाले नक्षत्र दिनमें देखनेमें नहीं आते हैं। यह पुरुष आंखसे उस वस्तुकोभी नहीं देखता है जो समान वस्तु समान वस्तुमें मिल जावे जैसे जलकी किसी बून्दको जलमें डाल दें तो उस बूंदको नहीं देखता है। यह पुरुष आंखसे भूत और भविष्यत्वार्ताको नहीं देखता है॥ और जो कुछभी यह पुरुष देखता है सो भी अन्यवस्तुकी सहायतासे देख सकता है। यदि सूर्य वा

चन्द्र वा नक्षत्र वा अग्नि वा दीपकका प्रकाश न हों तो किसीभी वस्तुको यह इस आंखसे नहीं देख सकता है। फिरभी प्रकाशकी सहायतासे इस आंखसे देखता हुआभी अत्यंत अल्प बोधको रखता हुआ यह पुरुष आकाशमें वर्तमान असंख्यात तारागणमेंसे किस २ के वृत्तान्तको यथावत् जानता है, और पृथ्वीपर वर्तमान असंख्यात वृक्ष और बूंटियोंमेंसे किस २ के गुणोंको यथावत् जानता है, और पृथ्वीपर वर्तमान असंख्यात पशु पक्षी और मनुष्योंमेंसे किस २ के भावोंको यथावत् जानता है। यहां तक कि यह दूसरे पुरुषोंके चित्त आदि व्यवहारोंको जानना तो अलग रहा अपने शरीरकेही वर्तमान व्यवहारकोभी नहीं जानता और नहीं देखता है। चाहे यह जीते शरीरको चीरे फाड़े चाहे मृतक शरीरको चीरे फाड़े चाहे यह शरीरको मद सुंघा-कर मूर्छित करके चीरे फाड़े, यह वर्तमान चेष्टाको नहीं देख सकता है क्योंकि मृतक शरीरमें चेष्टा दूसरी चेष्टा हो रही है और स्वस्थ शरीरमेंभी लोहूकी गति पलट जानेसे वर्तमान चेष्टाभी पलट जाती है। इस प्रकार सकल ब्रह्माण्डको यह पुरुष न देखता है और न जानता है, न तारोंको, न वृक्ष और बूंटियोंको, न पशु और पक्षियोंको, न मनुष्योंको और न अपने आपको। जैसे यह पुरुष इस आंखसे सकल पदार्थोंके बोधको नहीं पा सकता है इसी प्रकार और चार इन्द्रियोंसेभी कान नाक जीभ और त्वचासे॥ जब इस पुरुषका प्रत्यक्ष यह अत्यन्त अल्प है तो भला अनुमानकी दशा क्या कही जाय क्योंकि अनुमान प्रत्यक्षके अधीन है। जिस पुरुषने धूम और अग्निको साथ देखा वा सुना है वह धूमको देखकर अग्निका अनुमान कर लेता है कि वहां धुआं है वहां अग्निभी होगी। सर्वथा अदृष्ट और अश्रुत वस्तुमें अनुमान कहां चल सकता है॥ शब्दसेभी अल्पज्ञता निवृत्त नहीं होती है क्योंकि यह पुरुष वेदशास्त्रपर्यन्त शब्दको सुनकर और स्मरण करकेभी किसी पदार्थका यथावत् अनुभव नहीं कर सकता है॥ तो इस प्रकार अत्यन्त अल्पज्ञतामें पड़ा हुआ कौन पुरुष

है जो अपनी इस मांसचक्षुःका भरोसा करे और प्रत्यक्ष अनुमान और शब्दके भरोसेपर अपने समयको खोता हुआ श्रद्धाके द्वारको बन्द करके सो रहे। जो पुरुष इस प्रत्यक्ष और अनुमान और शब्दका भरोसा करके सर्वज्ञताचक्षुको पानेके लिये यत्न नहीं करता है वह वृथा अपने पांडित्यको प्रकाश करता हुआ दुःख संसार सागरसे पार नहीं जा सकता है। इसलिये जो पुरुष अपनी स्वाभाविकी सर्वज्ञताके साक्षात्कार करनेकेलिये यत्न करता है वह अपने खोए हुए सर्वज्ञता चिन्तामणिको पाकर संसारके बंधनोंसे छूट कर सदाके लिये अपने स्वरूपमें स्थित सर्व वस्तुओंको जानता हुआ सर्वकालपर्यन्त परमात्मा भगवान् परब्रह्मके लोकमें वास करता है॥ सर्वज्ञताकी व्याख्या ॥ जैसे परमात्मा भगवान् ईश्वर स्वभावसे सर्वज्ञ है इसी प्रकार यह पुरुषभी स्वभावसे

यो०॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ १ । २४ ॥

यो०॥ तत्र निरतिशयं सार्वज्ञ्यबीजम् ॥ १ । २५ ॥

यो०॥ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालानवच्छेदात् ॥ १ । २६ ॥

सर्वज्ञ है। किन्तु ईश्वर तो अनादिकालसे क्लेश कर्म विपाक और आशयसे मुक्त है परन्तु यह पुरुष अनादिकालसे इनके बन्धनमें चला आता है, राग द्वेष रूप क्लेशोंमें फंसा हुआ है, शुभ अशुभ पुण्य पाप रूप कर्मोंको करता चला आता है, उनके फल सुखदुःखोंको जो विपाक कहाते हैं भोगता चला आता है, शुभ अशुभ वासनाओंसे जो आशय कहाते हैं घिरा हुआ है। जब यह पुरुष तपोबलसे क्लेश कर्म विपाक और आशयसे रहित होकर शुद्धस्वरूपमें स्थित होता है तब अपनी सर्वज्ञताको ऐसे देख लेता और पा लेता है, जैसे कोई पुरुष अपने चिन्तामणिको घरमें रखे हुए को भूलकर फिर स्मरण कर ले और पा ले। उसको यह प्रतीत होता है कि यह तो हमारा चिन्तामणि था किन्तु इतने कालसे भूल गये थे अब स्मरण आ गया और उसको पा लिया।

इसी प्रकार पुरुष रागादिमें सोया हुआ जब जागता है तो यही देखता है कि अज्ञान निद्राने मुझको भुला दिया था यह सर्वज्ञता चिन्तामणि मेरा स्वाभाविक रत्न है, अब जागनेसे स्मरण हो गया और अब मैं अपने आपको उस ईश्वरके समान सर्वज्ञ देखता हूं॥ १। २४॥ किन्तु ईश्वरमें और अन्य मुक्त पुरुषोंमें इतना भेद रहता है कि अतिशय सर्वज्ञताका बीज ईश्वरमें है जितनी सर्वज्ञता ईश्वरमें है उससे अधिक सर्वज्ञताका भाव नहीं है॥ १। २५॥ और ईश्वर तो अनादि मुक्तसे होनेसे त्रिकालमें कभी अज्ञानमें नहीं सोता है इसलिये ईश्वर सब और मुक्तोंका गुरु है क्यों कि और मुक्त पुरुषोंके मुक्त होनेके कालका अवच्छेद है, कितनाही काल मुक्त हुए हुआ किन्तु उसका आदि है और ईश्वर त्रिकालमें मुक्त होनेसे कभीभी बंधनमें न था न है न होगा॥ १। २६॥ इस ईश्वरको बुद्ध ग्रन्थोंमें आदि बुद्ध कहते हैं और अन्य मुक्त पुरुषोंको बुद्ध कहते हैं इसलिये कि ईश्वर तो आदिकालसे

च०॥ ग्रहाम्बुदरजोधूमर्नीहारैरसमावृतम्। यथार्कमण्डलं भाति भाति सत्वं तथामलम्॥

जबसे है तबसे बुद्ध है जागा हुआ है और अन्य पुरुष पहले अबुद्ध होते हुएभी फिर तपोबलसे अपनी स्वाभाविकी सर्वज्ञताको पाकर बुद्ध हो जाते हैं अर्थात् जाग जाते हैं फिर नहीं सोते हैं। ईश्वर अनादिकालसे शुद्ध है रागद्वेषसे रहित है इसीलिये आदिबुद्ध है अनादिकालसे जागा हुआ है और इसीलिये मुक्त है किन्तु पुरुष रागद्वेषके बन्धनमें पड़ा हुआ अशुद्ध अबुद्ध और अमुक्त होता हुआ फिर तपोबलसे रागद्वेषसे रहित होकर शुद्ध होकर बुद्ध होकर मुक्त होकर ईश्वरके समान ईश्वरके लोकमें वास करता है। फिरभी इतना भेद और रहता है कि ईश्वर ब्रह्माण्डका स्वामी होता हुआभी बन्धनोंसे रहित सर्व समर्थ सर्व शक्तिमान् जगत्का अधिष्ठाता है किन्तु पुरुष मुक्त हुआ निःस्पृह इच्छासे रहित होकर उसी लोकमें विचरता है॥ देखो चरकके शारीरस्थानके पंचम अध्यायको। जैसे आकाशमें ग्रह मेघ रजस् धूम तुषार आदि घिर आनेसे सूर्यका

प्रकाश छिप जाता है और पुरुषोंको अन्धकार प्रतीत होता है किन्तु स्वभावसे सूर्यमें कुछ विकार नहीं आता है वह सर्व कालमें अपने प्रकाशमें समानतासे स्थित रहता है, इसी प्रकार यह पुरुषभी स्वभावसे सर्वज्ञ होता हुआभी चित्तमें रजस् और तमस्के आवरण होनेसे अल्पज्ञ प्रतीत होता है किन्तु पुरुषमें स्वभावसे कुछ विकार नहीं आता है वह सदा स्वस्वरूमें समानतासे स्थित रहता है। जो पुरुष आगे कहे हुए साधनोंमें प्रवृत्त होता है तो उसके चित्तके रजस् और तमस् शान्त हो जाते हैं चित्त शुद्ध हो जानेसे प्रज्ञा अर्थात् बुद्धिका प्रकाश स्वरूपसे प्रकाश करता है। काम क्रोध लोभ मोह और भयको रजस् कहते हैं। आलस्य निद्रा और अज्ञानको तमस् कहते हैं ॥ (योगसूत्रको देखो) सर्वज्ञतामें तीनों कालका सकल पदार्थोंके विष-

यो०॥ श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषयाविशेषार्थत्वात् ॥ १ । ४८ ॥

यो०॥ सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ३ । ४९ ॥

यो०॥ तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ३ । ५० ॥

प्र०॥ मार्गस्त्वमेका मोक्षस्य नास्त्यन्य इति निश्चयः ॥

यमें यथावत् बोध होता है ॥ १ । ४८ ॥ जो पुरुष रजस् और तमस्से रहित चित्तमें अपनेको प्रकृतिके धर्मोंसे सर्वथा पृथक् जानता है उस पुरुषको उस ज्ञानके साक्षात्कार हो जानेपर सर्व पदार्थोंका स्वामीपन प्राप्त हो जाता है और सर्वज्ञताकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३ । ४९ ॥ किन्तु सर्वज्ञ पुरुष मोक्षके पानेके लिये उस शक्तिसेभी मनस्को हटाय लेता है और अत्यन्त विरक्त हो जाता है। जैसा कि आगेके सूत्रमें लिखा है। उस सर्वज्ञता और उस शक्तिमत्तासेभी वैराग्य कर लेनेसे दोषोंका बीजतक नष्ट हो जाता है और तब कैवल्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाती है ॥ ३ । ५० ॥ सर्वज्ञतामें किसी प्रकारका अज्ञान नहीं रहता है सर्वथा और

सर्वदाके लिये सर्वज्ञता स्थित रहती है ॥ प्रज्ञापारमिताकी स्तुतिमें लिखा है । सर्वज्ञताको पाए विना कदापि मोक्ष नहीं होती है । इसलिये इस सर्वज्ञताके साक्षात्कार करनेके लिये सर्व पुरुषोंको यत्न करना चाहिये जो यह सर्वज्ञता मोक्षका द्वार है ॥ **ईश्वरकी विशेष व्याख्या** ॥ ईश्वर एक है अत्यन्त शुद्ध है सर्वत्र जगत्‌में व्यापक होता हुआभी अपने वैकुंठ लोकमें वास करता है सर्व समर्थ है अत्यन्त दयालु है भक्तिवत्सल है शरणागतवत्सल है उसका प्रकाश अनन्त सूर्योंके प्रकाशसेभी अधिक है ॥ जैसे सूर्य एकत्र एक स्थानमें स्थित है उसका प्रकाश अनुमान पौने उन्नीस पद्म योजन कक्षामें चारों ओरको फैला हुआ है और यह प्रकाश न कभी घटता है न बढ़ता है सर्वदा एक रस रहता है, किन्तु यहां दिनमें प्रतीत होता है और रातमें अस्तसा दिखाई देता है, यह सूर्यका प्रकाश समानतासे सब शरीरोंपर पड़ता है और उनके बीजोंके अनुकूल उनको फलाता फुलाता है, इस प्रकाशमें भेद नहीं है । इसीप्रकार एक स्थानमें रहते हुए ईश्वरका तेजस् सर्वत्र जगत्‌में व्यापक है सबपर समानतासे पड़ रहा है सर्वके कर्मोंमें यथावत् कर्मबीजके अनुकूल फलको उत्पन्न कर रहा है । किन्तु इतना भेद है कि सूर्यका तेजस् स्थूल है इसलिये स्थूल नेत्रोंसे दिखाई देता है और ईश्वरका तेजस् दिव्य तेजस् है वह दिव्य नेत्रोंसे दिखाई देता है, जिस पुरुषको दिव्य नेत्र प्राप्त हैं वह पुरुष ईश्वरके तेजस्‌को रात-दिन सकल ब्रह्मांडमें सूर्यके तेजस्‌के समान व्यापक देखता है॥ईश्वरका तेजस् सारे जगत्‌में अव्यक्त रीतिसे प्रकाश कर रहा है किन्तु वह तेजस् बुद्ध पुरुषोंमें संक्रान्त होकर व्यक्त रीतिसे शीतल प्रकाश करता है उन बुद्ध पुरुषोंका वचनामृत जगत्‌की तृष्णाको शान्त करता है, जैसे सूर्यका प्रकाश दिनमें स्वयं प्रकाश करता है और रात्रिमें वह प्रकाश चन्द्रमामें संक्रान्त होकर शीतल प्रकाश होकर जगत्‌की तपनको बुझाता है॥ यह ईश्वर एक स्थानमें रहता हुआभी सर्वसमर्थ है और जब चाहे और जिस कालमें चाहे किसी शरीरमें इच्छा-

मात्रसे पलभरमें प्रकट हो जाता है, किन्तु वह किसी भक्तकी भक्तिके वशमें होकर प्रकट होता है। उसके प्रकट करनेके लिये भक्ति चुम्बकका स्वभाव रखती है। प्रह्लादकी कथा विष्णुपुराणमें पढ़ना चाहिये ॥ ईश्वर निराकार है किन्तु निराकार नहीं है अर्थात् ईश्वरका आकार तो है किन्तु ऐसा आकार नहीं है जिस आकारको स्थूल नेत्र देख सकें, वह दिव्य आकार है इसलिये दिव्य नेत्रोंसे देखनेमें आता है ॥ ईश्वर

ध०॥ **धर्मानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं धर्मदेशनाविशुद्ध्यै संवर्तते ॥ ९ ॥**

अत्यन्त शरणागतवत्सल है। जो पुरुष चाहे जैसाभी पापी हो सच्चे भावसे ईश्वरकी शरण लेता है शरणागत बनता है उसपर ईश्वर अवश्य दया करता है और उसको ऐसा बोध उत्पन्न कर देता है जिससे वह पुरुष पापोंसे बच सके पुण्यमें चल सके फिर पुण्यबलसे पापको शान्त करके ईश्वरको पा लेता है और ईश्वरके लोकमें वास करता है ॥ ८ ॥ ध० ॥ धर्मके स्मरण रखनेको धर्मानुस्मृति कहते हैं। धर्मके उपदेशके कर-

१ देखो अवदानकल्पलताको । आलोकस्तिमिरे विपद्विषमणिः पाते करालम्बनं याञ्चाकल्पतरुर्जगज्जयरथः पाथेयमन्त्ये पथि । दुःखव्याधिमहौषधं भवभयोद्भ्रान्ताशयाश्वासनं तापे चन्दनकाननं स्थिरसुहृद्धर्मः सतां बान्धवः १

अर्थ—सत्पुरुषोंका बान्धव केवल धर्म होता है जो धर्म अंधकारमें प्रकाश करता है, और जो विपत्तिरूप विषको दूर करनेमें विषमणिके समान है, और जो पात होनेके समय हस्तका अवलंबन करता है, और जो मांगनेपर कल्पवृक्षके समान फल देता है, और जो जगत्को जीतनेमें जयरथके समान है, और जो परलोक जानेके समय अंतमार्गमें भोजनका काम देता है, और जो दुःखरूप व्याधियोंके दूर करनेमें महदूऔषध है, और जो संसारमें आनेजानेके भयसे भ्रान्तचित्तवाले पुरुषोंको शान्ति देता है, और जो सांसारिक तापोंसे तपे हुए मनुष्योंको चन्दनके वनके समान शीतल करता है, और जो सर्वकालमें पूर्णमित्र रहता है कभी साथ नहीं छोड़ता है, ऐसा धर्मही केवल सत्पुरुषोंका सहाय है संसारका दूसरा पदार्थ ऐसा सहायक कभी नहीं है इसलिये धर्मका संचय करना चाहिये ॥ १ ॥

नेको धर्मदेशना कहते हैं। धर्मकी अनुस्मृति धर्मालोकमुख है और धर्मके उपदेशकी शुद्धिको उत्पन्न करता है। जो पुरुष धर्मका स्मरण कर लेता है वह पुरुष दूसरोंकोभी शुद्ध धर्मका उपदेश करता है जो दूसरे प्राणियोंको उपदेश करना परम उदार धर्म कहा गया है ॥९॥ ध०॥ सत्पुरुषोंके समूहको संघ कहते हैं। भिक्षुक और संन्यासियोंके समूहकोभी संघ कहते हैं। सत्पुरुषोंका स्मरण रखना संघानुस्मृति कहलाता है। धर्मके मार्गपर चलना और धर्मके मार्गको उल्लंघन न करना न्यायका अवक्रमण कहाता है। संघानुस्मृति धर्मालोकमुख है और धर्मके मार्गमें स्थिति होनेको उत्पन्न करता है। जो पुरुष सत्पुरुषोंकी स्मृति रखता है तो वह ठीक न्याय सत्य और धर्मका आचरण करनेमें समर्थ होता है। इसलिये सब शास्त्रोंमें सत्पुरुषोंकी उपासना करनेकी आज्ञा है और असत् अर्थात् दुष्ट पुरुषोंका संग छोड़नेका विधान किया है। जो पुरुष

ध०॥ संघानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं न्यायावक्रमणतायै संवर्तते ॥ १० ॥

ध०॥ त्यागानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं सर्वोपाधिप्रतिनिःसंगतायै संवर्तते ॥ ११ ॥

दुष्टोंका संग करता है वह उनके दुष्ट आचरणोंको सीखकर उनका स्मरण जीमें रखता हुआ दुष्ट कर्मोंका आचरण करता है और उसके फलमें घोर नरकोंमें पतित होकर महादुःखोंको उठाता है। इसलिये पुरुषको चाहिये कि सत्पुरुषोंकी उपासना करे सत्पुरुषोंकी भक्ति करे सत्पुरुषोंके आचरणको सीखे ॥ १० ॥ ध० ॥ त्याग संन्यास वैराग्यका एकही अर्थ है विषयोंसे मनको हटाना वैराग्य कहाता है। विषयोंको छोड़ना त्याग और संन्यास कहाता है। त्यागकी अनुस्मृतिका नाम त्यागानुस्मृति है। यह धर्मालोकमुख सब उपाधि अर्थात् सांसारिक उपद्रवोंकी प्रतिनिःसंगता अर्थात् निवृत्तिको उत्पन्न करता है। जो पुरुष अत्यन्त वैराग्यमें स्थित हो जाता है उसका सब विषयोंसे संग हटकर परम तत्वके अभ्यासमें जम जाता है जबतक संसारके

विषयोंसे मन नहीं हटता तबतक योगका अभ्यास स्थिर नहीं होता है। इसलिये यहां वैराग्य और अभ्यासकी चर्चा जैसी पातंजल योगसूत्रमें लिखी है करते हैं ॥ मनुष्यका कर्तव्य अपनी सर्वज्ञताका साक्षात्कार करना है जिस सर्वज्ञताका साक्षात्कार करके परम सुख मोक्ष कैवल्यको पा लेता है (कैवल्यकी व्याख्या आगे करेंगे)। सर्वज्ञताका साक्षात्कार चित्तकी वृत्तिओंके निरोधके विना नहीं होता है। और चित्तकी वृत्तिओंका निरोध अभ्यास और वैराग्यसे होता है। इसलिये भगवान् पतंजलिने प्रथम योगका लक्षण कहके फिर उसका उपाय इन नीचे लिखे सूत्रोंमें बताया है ॥ चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको योग कहते हैं ॥ १ । २ ॥ और उन वृत्तियोंका निरोध अभ्यास और वैराग्यसे होता है॥ १ । १२ ॥ सर्वोपाधि अर्थात् चित्तवृत्तियोंकी

यो०॥ अथ योगानुशासनम् ॥ १ । १ ॥ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १ । २ ॥

यो०॥ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १ । १२ ॥

यो०॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ १ । ३ ॥ वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ १ । ४ ॥

व्याख्या ॥ सब उपाधि अर्थात् वृत्तियां दो प्रकारकी है, एक शारीरक और दूसरी मानस। शारीरक वृत्तियोंका निरोध सुगम उपायसे हो जाता है किन्तु मानस वृत्तियोंका निरोध अत्यन्त वैराग्यके विना नहीं होता है। शारीरकवृत्ति तो केवल वानप्रस्थ वा संन्यास अवस्थामें जानेसे प्रायः दूर हो जाती हैं इसलिये उनका लिखना कुछ आवश्यक न जानकर भगवान् पतंजलिने चित्तकी वृत्तियोंका वर्णन इस प्रकार किया है॥ जब चित्तकी वृत्तियोंका निरोध हो जाता है तब द्रष्टा अर्थात् पुरुषकी स्वरूपमें अवस्थिति होती है अर्थात् आत्मा सब संगोंसे रहित होकर मोक्षकी दशाको पा लेता है ॥ १ । ३ ॥ किन्तु जब वृत्तियोंका निरोध नहीं होता है तब पुरुष चित्त वृत्तियोंके अनुकूल सुखी दुःखी ज्ञानी अज्ञानी भासता है ॥ १ । ४ ॥

इसलिये इन वृत्तियोंका निरोध करना चाहिये ॥ वृत्तिं पांच प्रकारकी हैं। और यह वृत्ति दोनों प्रकारकी हैं क्लेश पहुंचानेवाली और क्लेश न पहुंचानेवाली, प्रथम क्लेश पहुंचानेवाली वृत्तियोंका निरोध किया जाता है और फिर प्रज्ञा और धर्मकी संस्काररूप वृत्तियां भी जो क्लेश देनेवाली नहीं है निर्बीज समाधिमें रुक जाती है ॥ १। ५ ॥ इसलिये जो वृत्ति क्लेश पहुंचानेवाली हैं वे पांच यह हैं। प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा और स्मृति ॥ १। ६ ॥ प्रत्यक्ष अनुमान और शब्दका नाम प्रमाण है। इसकी चर्चा अल्पज्ञताकी व्याख्यामें कर चुके हैं ॥ १। ७ ॥ जैसे प्रमाणवृत्ति अल्पज्ञताकाही भेद है ऐसेही यह चारों वृत्तिभी अल्पज्ञताहीके नाम भेद हैं। क्यों कि सर्वज्ञतामें यह पांचों वृत्ति नहीं होती हैं। मिथ्या ज्ञानका नाम विपर्यय है जो ज्ञान तद्रूपप्रतिष्ठ

यो०॥ वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥१।५॥ प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥१।६॥
तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥१।७॥ विपर्ययोमिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥१।८॥
शब्दज्ञानानुपातीवस्तुशून्योविकल्पः॥ १। ९॥ अभावप्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा ॥१।१०॥

न होवे अर्थात् जो जिसका स्वरूप है वह उस प्रकार न भासे अन्यथा भासे तो विपर्यय कहलावेगा जैसे दो चन्द्रमाका दिखाई देना अथवा बालूको ग्रीष्म ऋतुमें जल जानना इत्यादि ॥१।८॥ जो वस्तु तो वर्तमान न होवे किन्तु चित्तमें शब्दमात्रका ज्ञान होनेसे संकल्प जो उत्पन्न होते हैं उन संकल्पोंको विकल्प कहते हैं। यहभी अल्पज्ञताकाही भेद है क्यों कि जिस पुरुषको जिस वस्तुका यथावत् बोध नहीं होता है वह पुरुष उस विषयके विकल्पोंको उत्पन्न करके चित्तको वृथा विक्षिप्त करता है। इन विकल्पोंकी गिनती नहीं है। असंख्येय शब्द है और उन सब शब्दोंके विषयके विकल्प होते हैं ॥ १। ९ ॥ अभावके ज्ञानका आश्रय जिस वृत्तिमें होवे उसे निद्रा कहते हैं क्यों कि निद्रामें सब वस्तुओंका यथावत् बोध नहीं होता है। जो

पुरुष सर्वज्ञ होता है उसकी निद्राका अभाव हो जाता है ॥ १ । १० ॥ अनुभव किये हुए विषयोंकी चित्तसे निवृत्ति न होवें तो उसको स्मृति कहते हैं । यहभी अल्पज्ञताका भेद है क्योंकि स्मृति उन पदार्थोंकी जिनका भाव अन्यथा वर्तमान है अन्यथा होती है और वह स्मृति चित्तको एकाग्र नहीं होने देती है इसलिये इसकोभी वृत्ति मानकर निरोध करनेके लिये उपदेश दिया है किन्तु वह शुद्ध स्मृति जो चित्तका पूर्ण निरोध हो जाने-पर प्राप्त हो जाती है बाधक नहीं है और वह सर्वज्ञताका एक अंग है ॥ १ । ११ ॥ इन वृत्तियोंका निरोध अभ्यास और वैराग्यसे हो जाता है । मनको एकाग्र करनेका जो यत्न अर्थात् उपाय किया जाय उसको अभ्यास कहते हैं । चित्तमें धर्मको बसाना, यमनियम आदिको चित्तमें दृढ करना, प्राणायाम आदि करना,

यो०॥ अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥१।११॥ तत्रस्थितौयत्नोऽभ्यासः ॥१।१३॥

यो०॥ स तु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः ॥ १।१४ ॥

यो०॥ दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १।१५ ॥

इस सबको अभ्यास जानना चाहिये॥१।१३॥ यह अभ्यास यदि बहुत कालतक किया जावे और निरंतर किया जावे और सत्कारपूर्वक किया जावे तो यह अभ्यास दृढभूमि हो जाता है । इस अभ्यासको ब्रह्मचर्या-पूर्वक तपसे और विद्यासे और श्रद्धासे संपादन करना चाहिये तो यह अभ्यास दृढ होकर फिर न टूटेगा॥ ॥ १ । १४ ॥ वैराग्यकी व्याख्या ॥ अभ्यासका सहायक और चित्तवृत्तिके निरोधका मुख्य कारण वैराग्य है । जितने देखे हुए और सुने हुए शब्द रूप रस गन्ध और स्पर्श पांच विषय हैं उन सबको अनित्य जानकर जब उन सबकी प्राप्तिकी तृष्णा दूर हो जाती है तो ऐसे वैराग्यको वशीकारसंज्ञा कहते हैं । संसारके देखे हुए विषयोंको दृष्ट विषय कहते हैं । स्वर्गके सुने हुए विषयोंको आनुश्राविक विषय कहते हैं ॥

॥ १ । १५ ॥ और यहांतक कि सर्वज्ञताको पाकर पुरुपज्ञान हो जानेपर जो गुणोंसेभी विरक्तता हो जाती है उसको पर वैराग्य कहते हैं। यह परवैराग्य केवल शुद्ध ज्ञानके उदय होनेपरही होता है ॥ १ । १६ ॥ वैराग्यकी दृढता तब होती है जब संसारकी अनित्यताका निश्चय हो जाता है। इस पृथिवीके सारे पदार्थ और स्वर्गकी संपत्तिभी सबही अनित्य है, सर्वकालतक स्थित नहीं रहती है, सब शरीरोंका परिणाम हो जाता है, सब पदार्थ अपने कारणमें लीन हो जाते हैं इसीसे अनित्य कहाते हैं। संसारमें स्थावर और जंगम जितने शरीर हैं सब उत्पन्न हो २ कर लीन होते चले जाते हैं, क्या वृक्ष क्या कीट क्या पक्षी क्या पशु क्या मनुष्य सब उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, और जितने महात्मा महापुरुष योगीश्वर हुए वहभी इस चोलेको छोड़कर चले गये और वह देवताभी जिनकी आयुः अनेक कल्पोंकी है चोला पलटते हैं।

यो०॥ तत्परं पदपुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १ । १६ ॥

यहांतक कि ब्रह्माभी चोला पलटता है जिसकी आयुः सौ वर्षकी है और जिसके एक वर्षमें तीनसौ साठदिन होते हैं और एक दिनरातमे दो कल्प होते हैं और एक कल्पमें एक सहस्र चतुर्युगी होती हैं और एक चतुर्युगीमें तिंतालीस लाख बीस सहस्र मनुष्यके वर्ष होते हैं ॥ इस संसारमें यह चोला बालक बनता है युवा बनता है वृद्ध बनता है मरता है उत्पन्न होता है व्याधिमें फंसता है कंगालभी हो जाता है दुःखीभी हो जाता है। इस प्रकार शरीरकी अवस्था पलटती चली जाती हैं। तो इस प्रकार पलटनेवाली वस्तु इस शरीरमें कौन जानकर प्रेम उत्पन्न करे। चाहे जितनाभी साधन शरीरका किया जावे पर यह शरीर तो रहना नहीं, चाहे जितना उपाय जीनेका किया जावे पर यह जीवन तो रहना नहीं, चाहे जितना यत्न लाभ सत्कार और कीर्तिके निमित्त किया जावे पर यह लाभ सत्कार और कीर्ति तो सदाको रहती नहीं ॥ (देखो अष्टसाहस्रिका

तीस परिवर्त) ऐसा जानकर जो पुरुष इस शरीरको अनर्थ जान लेता है जीवनकी चाहना नहीं रखता है लाभका आश्रय छोड देता है सत्कारकी चाहना नहीं करता है कीर्तिकी इच्छा नहीं रखता है वह पुरुष सर्वज्ञताका साक्षात्कार करता है ॥ चाहे काया रहे चाहे जावे, चाहे जीवन शेष रहे चाहे पूरा हो, चाहे लाभ हो वा न हो, चाहे कोई सत्कार करे वा न करे, चाहे जगत्में कीर्ति हो वा अपकीर्ति हो पुरुषको चाहिये कि न शरीरकी थकानसे डरे, न मनकी थकानसे डरे, न भूख देखे, न पिलास देखे, न रात देखे, न दिन देखे, न शीतसे घबरावे, न उष्णसे घबरावे । न आगे देखे न पीछे देखे न दहनी ओर देखे न बांई ओर

प्र०॥ कायेऽनर्थिकेन जीवितनिरपेक्षेण लाभसत्कारश्लोकेष्वनिश्रितेन पर्येषमाणेन पर्येषिता । प्रज्ञापारमितेति शेषः ॥

प्र०॥ तथा च गच्छ यथा न कायक्लमथमनसिकारमुत्पादयासि न स्त्यानमिद्धमनसिकारमुत्पादयसि न भोजनमनसिकारमुत्पादयसि न पानीयमनसिकारमुत्पादयासि न शीतमनसिकारमुत्पादयसि नोष्णमनसिकारमुत्पादयसि ॥ इत्यादि ॥ (अष्टसाहस्रिका ३० परिवर्त)

ध०॥ लीलानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं प्रणिधानपरिपूर्त्यै संवर्तते ॥ १२ ॥

देखे न ऊपर देखे न नीचे देखे सब ओर देखता हुआभी न देखे । शब्दसे न डरे, जीव जन्तुसे न डरे, सांप विच्छूसे न डरे, आग पानीसे न डरे केवल ईश्वरके स्मरणमें ध्यानमें भक्तिमें तत्पर रहे तो किसी न किसी कालमें अवश्यचित्तके शुद्ध हो जानेपर भगवान्का दर्शन करेगा और सर्वज्ञताको पावेगा और संसारके बन्धनोंसे छुटेगा ॥ ११ ॥ ध० ॥ लीलाका अर्थ चरित है । जो मुक्त पुरुष सर्वज्ञ हुए हैं उनके जीवन चरितको स्मरण रखनेका नाम लीलानुस्मृति है । चित्तकी इच्छाविशेषको प्रणिधान कहते हैं । परिपूर्त्तिका

अर्थ पूर्ण होनेका है। जो पुरुष सर्वज्ञ पुरुषोंके जीवन चरितको स्मरण रखता है उस पुरुषको इस धर्मालोकमुखसे चित्तकी सर्वज्ञताकी प्राप्तिकी इच्छा परिपूर्ण हो जाती है जिसके परिपूर्ण हो जानेसे वह अन्य संसारके जीवोंका परम उपकार करनेमें सिद्ध हो जाता है क्योंकि वह पुरुष यह बात जान लेता है कि किस प्रकार सर्वज्ञ पुरुषोंने सर्वज्ञताको प्राप्त किया है उसी प्रकार वहभी धर्मका अनुष्ठान करके अपने प्रणिधानको परिपूर्ण कर लेता है ॥ ललितविस्तरमें चार प्रणिधान इस प्रकार वर्णन किये गये हैं। देखो पन्द्रहवा अध्याय (परिवर्त) ॥ सर्व जीवोंको संसारमें बंधा हुआ देखकर अत्यन्त दीर्घकालतक बोधिसत्व यह जीमें संकल्प उत्पन्न करता है कि मैं इन सब जीवोंको संसारके बंधनसे खोल दूं और तृष्णारूपी हथकड़ी और बेड़ियोंको सब जीवोंकी काटकर मुक्त कर दूं ॥ यह पहला प्रणिधानपद हुआ ॥ संसारमें महाअविद्यारूप घोर अंधकारमें पड़े हुए जीवोंके अज्ञानरूपी आंखके मोतियाबिन्दको प्रज्ञाचक्षुःके द्वारा मैं नाश कर दूं। सब अज्ञानरूप घोर अन्धकारसे निकालकर सर्वज्ञतारूप महाप्रकाशमें सब जीवोंको स्थित कर दूं॥ यह दूसरा प्रणिधानपद हुआ ॥ अहंकार और ममकारमें फंसे हुए और मिथ्या दृष्टिमें पड़े हुए संसारके जीवोंको शुद्ध योगमार्गका उपदेश करके उनकी मानकी ध्वजाको मैं गिराय दूं ॥ यह तीसरा प्रणिधानपद हुआ ॥ अशान्त चित्त होनेके कारण यह संसारके जीव इस लोकसे परलोकको और परलोकसे इसलोकको आ जा रहे हैं उनको मैं तृप्ति करनेवाले सर्वज्ञता धर्मका उपदेश करूं जिससे वह पुरुष आवागमनके बंधनसे छूट जावें ॥ यह चौथा प्रणिधानपद हुआ ॥ ऐसे प्रणिधान विशेष केवल बोधिसत्वके जीमें उत्पन्न होते हैं और जो पुरुष श्रावक भूमि और प्रत्येकबुद्ध भूमिमें मोक्षका साक्षात्कार करते हैं उनके जीमें यह प्रणिधान नहीं उत्पन्न होते हैं। इसलिये बोधिसत्व भूमिमें स्थित होकर और उस भूमिकी महिमा जानकर जो बुद्ध

भूमिके सर्वज्ञ योगियोंकी लीलाका चित्तमें स्मरण रखता है उसको इन चारों प्रणिधानोंकी परिपूर्णता प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ ध० ॥ देवताओंका स्मरण रखना धर्मालोकमुख है और यह उदारचित्तताको उत्पन्न करता है अर्थात् चित्तको उदार बनाता है। जिस प्रकार देवता उदार चित्त हैं और सात्विकस्वरूप हैं इसी प्रकार उसके जीमें चाहना होती है कि मैंभी उदारचित्त और सात्विकस्वरूप बनूं ॥ इन देवताओंके लोकोंका वर्णन पतंजलि महर्षिने इन सूत्रोंमें किया है ॥ जब योगी समाधिमें सूर्यमें संयम करता है तो योगीको सब भुवन अर्थात् लोकोंका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥ ३ ॥ २६ ॥ और जब चन्द्रमें संयम करता है तो तारागणोंका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥ ३।२७ ॥ और जब ध्रुव नाम तारामें जो उत्तर दिशामें

ध० ॥ देवतानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखमुदारचित्ततायै संवर्तते ॥ १३ ॥

यो० ॥ भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ ३ । २६ ॥ चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ ३।२७ ॥

यो० ॥ ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ ३ । २८ ॥

स्थित है संयम करता है तो सब तारा और ग्रहोंकी गतिका ज्ञान हो जाता है ॥ ३ ॥ २८ ॥ (धारणा ध्यान और समाधि तीनों मिलकर संयमके नामसे कहे जाते हैं। यह योगकी परिभाषा जाननी चाहिये। धारणा ध्यान और समाधिका लक्षण आगे लिखेंगे ॥ ध्रुव दो हैं एक उत्तर दिशामें और एक दक्षिण दिशामें। पृथिवीके गोल होनेके कारण लंकाके उत्तरमें उत्तरध्रुव दीखता है और लंकाके दक्षिणमें दक्षिणध्रुव दीखता हैं। इन तारोंका नाम ध्रुव है किन्तु चलते यहभी हैं। भेद यह है कि यह अपनी कीलीपर घूमते हैं और अन्य तारागण इनके चारों ओर घूमते हैं इसलिये यह ध्रुव चलते दृष्ट नहीं आते हैं और अन्य तारागण चलते दीखते है। श्रीमद्विष्णुपुराणमें चक्र अर्थात् चाकका दृष्टांत दिया है। जैसे चाकके घूमनेमें चाकका

बीचका भाग जिसको नाभि कहते हैं घूमता हुआभी वहीं स्थिर दीखता है और चक्रका घेरा जिसको परिधि कहते हैं सर्वथा स्थानको पलटता रहता है इसी प्रकार ध्रुवकी गति जानना चाहिये। विष्णुपुराण और सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थोंमें इसका विस्तारसे वर्णन है॥) महर्षि व्यासजीने अपने भाष्यमें इन सूत्रोंकी व्याख्यामें लोकोंकी चर्चा इस प्रकार की है॥ अवीचिसे लेकर मेरुपृष्ठतक भूलोकवर्णन किया है। भूलोक पृथिवीका नाम है। पृथिवीपर मनुष्योंका और पशुपक्षी आदि जीवजन्तुओंका वास है। मेरुपृष्ठसे लेकर ऊपरको ध्रुव तारातक अन्तरिक्षलोक है। यह लोक बड़ा आकाशमंडल है जो नौ ग्रह सत्ताईस नक्षत्र और अनेक तारागणोंसे शोभित है। उससे ऊपर माहेन्द्रलोक है और वह पांच प्रकारका है। यह तीसरा लोक है और इसका नाम स्वर् अर्थात् स्वर्गभी है। इन पांचोंके नाम भाष्यमें नहीं दिये हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है

यो० भा०॥ ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान्।
माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजाः॥

कि इन्द्रलोक शिवलोक अग्निलोक वरुणलोक कुबेरलोक ये पांचलोक माहेन्द्रलोकके नामसे कहे गये होंगे। माहेन्द्र लोकसे ऊपर चौथा प्राजापत्य लोक है जिसमें प्रजापतिका वास है इसका नाम महर्लोक है। इससे ऊपर ब्रह्माके तीन लोक हैं जिनके नाम जनलोक तपोलोक और सत्यलोक हैं॥ ये सात लोक भुवन कहाते हैं॥ माहेन्द्रलोकमें छः प्रकारके देव वास करते हैं। त्रिदश अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मितवशवर्ती और परिनिर्मितवशवर्ती। ये सब देवता संकल्पसिद्ध हैं, अणिमा आदि आठ सिद्धियोंसे युक्त हैं, एक कल्पकी इनकी आयु है, उत्तम और अनुकूल अप्सराओंका भोग प्राप्त है॥ प्रजापतिके महान् लोकमें पांच प्रकारके देवोंका वास है। कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अंजनाभ और प्रचिताभ। इन

देवोंकी आयु एक सहस्र कल्पोंकी हैं, ध्यान इनका आहार है, महाभूत इनके वशमें हैं॥ ब्रह्माके प्रथम लोक जनलोकमें चार प्रकारके देव निवास करते हैं। ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, महाब्रह्मकायिक, और अमर। इन सब देवोंका ध्यान आहार है, महाभूत और इन्द्रिय इनके वशमें हैं॥ ब्रह्माके द्वितीयलोक तपोलोकमें तीन प्रकारके देवता निवास करते हैं। आभास्वर, महाभास्वर, और सत्यमहाभास्वर। इन सबका ध्यान आहार है, सब ऊर्द्ध्वरेतस् हैं, सबका ज्ञान निर्मल और अप्रतिहत अर्थात् बेरोक है। महाभूत, इन्द्रिय, और प्रकृति इनके वशमें हैं। आयुः इनकी क्रमसे दूनी है अर्थात् ब्रह्मपुरोहित देवों की आयुः एक सहस्र कल्प है, ब्रह्मकायिक देवोंकी आयुः दो सहस्र कल्प है, महाब्रह्मकायिक देवोंकी आयुः चार सहस्र कल्पकी है और अमर देवोंकी आयुः आठ सहस्र कल्पकी है। आभास्वर देवोंकी आयुः सोलह सहस्र कल्पकी है, महाभास्वर देवोंकी आयुः बत्तीस सहस्र कल्पकी है, और सत्यमहाभास्वर देवोंकी आयुः चौसठ सहस्र कल्पकी है॥ ब्रह्माके तीसरे लोक सत्य लोकमें चार प्रकारके देवता निवास करते हैं। अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ, और संज्ञासंज्ञी। अच्युत देवोंको सवितर्क ध्यानका सुख प्राप्त है, शुद्धनिवास देवोंको सविचार ध्यानका सुख प्राप्त है, सत्याभ देवोंको आनन्दमात्र ध्यानका सुख प्राप्त है संज्ञासंज्ञी देवोंको अस्मितामात्र ध्यानका सुख प्राप्त है (इन ध्यानोंकी व्याख्या समाधि व्याख्यामें करेंगे) प्रधान इनके वशमें है। एक सर्गतककी इनकी आयु है, ब्रह्माका एक सर्ग बहत्तर सहस्र कल्पका होता है, इस प्रकार इन सबकी आयु बहत्तर सहस्र कल्पकी है॥ यह सब ब्रह्माके तीनों लोक विदेह प्रकृतिलय हैं और विदेह मुक्त हैं इसलिये इनकी गिनती स्वर्गमें नहीं है स्वर्गसे यह ऊंची भूमिके हैं किन्तु कैवल्य मुक्तोंकी अपेक्षा नीची भूमिके हैं॥ विदेह देवोंके चित्तमें भवका प्रत्यय अर्थात् वासनारूप ज्ञान रहता है और प्रकृतिलय

देवोंकीभी यही दशा होती है यह मोक्षकेसे सुखको भोगतेसे हैं किन्तु आयुः पुरी हो जानेपर फिर उन-लोकोंसे पात हो जाता है इसलिये महलोक जनलोक तपोलोक और सत्यलोक विदेह और प्रकृतिलय कहाते हैं ॥ १ । १९ ॥ मुक्तलोकको परब्रह्मलोक कहा है और कहीं उसको परमात्मा परमेश्वर और आदिबुद्धके लोकके नामसे कहा है वह लोक इन सब सात लोकोंसेभी ऊपर है, उस लोकमें जाकर फिर आवृत्ति नहीं होती है । न पुनरावर्तते न पुनरावर्तते ऐसा श्रुतिओंनें प्रतिपादन किया है । इसी लोकमें जानेका

यो०॥ भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १।१९ ॥

ध०॥ कायगतानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं कायविवेकतायै संवर्तते ॥ १४ ॥

नाम कैवल्यमोक्ष है । इस लोकमें गये हुए मुक्त पुरुषोंको निर्बीज समाधि प्राप्त हो जानेसे सब वासना-ओंका क्षय हो जाता है इसलिये वह फिर लौटकर नहीं आते है ॥ इन लोकोंकी चर्चा ललितविस्तरमेंभी विस्तारसे लिखी है पर हमने यहां संक्षेपसे पातंजलसूत्रके भाष्यका आश्रय करकेही लिखा है ॥१३॥ध०॥ काय अर्थात् शरीरमें वर्तमान वस्तुओंकी स्मृतिका नाम कायगतानुस्मृति है। यह धर्मालोकमुख काय अर्थात् शरीरके विवेकको उत्पन्न करता है । जिसको शरीरमें वर्तमान रस, रक्त, मांस मेदा, अस्थि, मज्जा, और शुक्र और मल, मूत्रकी स्मृति हो जाती है कि शरीर इनसे बना है उसको शरीरकी अनित्यताका बोध हो जाता है ॥

---

१ कायगतानुस्मृति, वेदनागतानुस्मृति, चित्तगतानुस्मृति, और धर्मगतानुस्मृति यह चार अनुस्मृति, चार सम्यक् प्रहाण, चार ऋद्धिपाद, श्रद्धेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रिय, श्रद्धाबल आदि पांच बल, स्मृतिसंबोध्यंग आदि सात संबोध्यंग, और सम्यग्दृष्टि आदि आठ अष्टांगमार्ग यह सब सैंतीस बोधिपक्षधर्म कहाते हैं । अर्थात् यह बोधिके अंग है । इन सबका पूर्ण अनुष्ठान करनेसे बोधि प्राप्त होती है ॥

शरीरका विवेक हो जानेसे शरीरसे प्रीति जाती रहती है और आत्मदर्शनकी चेष्टा हो जाती है ॥ शरीरकी अनित्यताको दिखानेके लिये महात्मा भर्तृहरिके वैराग्यादिके श्लोक और योगवाशिष्ठमें वाल्मीकि महर्षिके कहे हुए वैराग्य प्रकरणके श्लोकोंको बड़ा मानना चाहिये ॥ १४ ॥ ध० ॥ वेदना सुख दुःखका नाम है। वेदनागत सुख दुःखकी स्मृतिका नाम वेदनागतानुस्मृति है। यह धर्मालोकमुख सब वस्तुओंकी शुद्धिके निश्चयको उत्पन्न करता है। जब चित्तके रागद्वेषही वेदनाके कारण प्रतीत हो जाते हैं तो सर्व अन्य वस्तुओंके निर्दोष भासनेसे सब वस्तुसे रागद्वेष निवृत्त हो जाता है ॥ १५ ॥ ध० ॥ चित्तगत संकल्पादिकी जब

ध०॥ वेदनागतानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं सर्वावेदितप्रतिप्रश्रब्ध्यै संवर्तते ॥ १५ ॥

ध०॥ चित्तगतानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं मायोपचितप्रत्यवेक्षणतायै संवर्तते ॥ १६ ॥

यो०भा०॥ गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम् ॥ ४ । १३ ॥

ध०॥ धर्मगतानुस्मृतिर्धर्मालोकमुखं वितिमिरज्ञानतायै संवर्तते ॥ १७ ॥

यथावत् अनुस्मृति हो जाती है तो इस धर्मालोकमुखसे यह विचार उत्पन्न हो जाता है कि सब वस्तु मायाका उपचय अर्थात् समूह है। जैसे चित्तके संकल्प आदि सब मिथ्या है इसी प्रकार सब वस्तु मायाके समान भासनेसे चित्तमें अत्यन्त वैराग्य हो जाता है ॥ देखो योगभाष्य ॥ गुणोंका परम स्वरूप नेत्रोंके मार्गमें नहीं आता है। गुणोंके परमस्वरूपको नेत्र नहीं देखते हैं। और जो स्थूलरूप नेत्रोंके देखनेमें आता है वह तो मायाके समान बहुतही तुच्छ है अर्थात् पदार्थोंका यह बाहरका स्वरूप अत्यन्त अनित्य है और मायाके समान है। इससे चित्तको हटा लेनेसे चित्तमें शान्ति आजाती है ॥ १६ ॥ ध० ॥ धर्मगत पदार्थोंकी अनुस्मृति

रूप जो धर्मालोकमुख है सो अंधकार रहित ज्ञानको उत्पन्न करता है। धर्म और धर्मके अंगोंकी पूरी २ स्मृति जब चित्तमें स्थिर हो जाती है तब पुरुष अधर्मरूप अंधकारसे निकलकर ज्ञानरूप प्रकाशको प्राप्त होता है इसलिये सर्वकालमें सर्व पुरुषोंको धर्मकाही अनुस्मरण करना चाहिये ॥ अहिंसा धर्मका मुख्य स्वरूप है। अहिंसामें पुरुष जितना २ स्थित होता जाता है उतना २ ही शुद्ध धर्मको पाता है इसलिये एक स्थानपर तपस्वीकी स्तुतिमें एक श्लोक ललितविस्तरमें लिखा है कि—जितने प्रकारके तपस्वी लोकमें हैं यात्रा और व्रत और तप करनेवाले उनमें वह तपस्वी सबमें प्रधान अर्थात् श्रेष्ठ है जो सब जीवोंकी अहिंसा करता है अर्थात् किसी जीवको किसी प्रकारभी कुछ दुःख नहीं पहुंचाता है इसी प्रकार चरकमें

ल०॥ ये केचिदृषयः सुयात्रव्रतचारिणस्तपोयुक्ता। तेषामयं प्रधानो ह्यहिंसकः सर्वभूतानाम्॥

यो०भा०॥ स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति ॥

धर्मका लक्षण (सर्वभूतदया धर्मः) ऐसा लिखा है कि सब जीवोंपर परम दया करनाही धर्म हैं जो जीवोंपर दया नहीं करता है उसके चित्तसे क्रोधरूप द्वेष नहीं निकलता है इसलिये अहिंसा धर्मपर स्थित होना चाहिये। इसलिये व्यास महर्षिने यम और नियमके भाष्यमें अहिंसाकी प्राप्तिको मुख्य और सत्य आदि सब और अंगोंको अहिंसाका साधक वर्णन किया है। देखो योग भाष्यको ॥ वह ब्राह्मण निश्चय करके जितना २ बहुत २ व्रतोंको ग्रहण करनेकी इच्छा करता है और बहुत २ व्रतोंका पालन करता है उतना उतनाही प्रमादसे किये हुए हिंसाके कारणोंसे निवृत्त होकर उसही शुद्ध अहिंसाको पालन करता है। अहिंसामें प्रतिष्ठित हो जानेका फलभी योगसूत्रमें वर्णित है। जो पुरुष अहिंसामें पूर्णरीतिसे स्थित हो जाता

है उसके समीप सब जीवोंका स्वाभाविक वैरभी निवृत्त हो जाता है। इसलिये वह पुरुष पूर्ण निर्भय होता है जो किसीकी हिंसा नहीं करता है ॥ इसलिये अहिंसा धर्ममें स्थित होना मुख्य ज्ञानकी प्राप्तिका साधन है ॥ ॥१७॥ध०॥ मैत्री सब जीवोंसे मित्रताभाव रखनेका नाम है। यह धर्मालोकमुख सब उपाधिवाले पुण्य कर्मोंके फलकी चाहनाको दबाय देता है और शुद्ध निष्कामताको उत्पन्न करता है। जो पुरुष सब जीवोंके साथ मित्रभावसे उपकार करना चाहता है वह अपने किये हुए सब पुण्यकर्मोंके फलको सब जीवोंके अर्पण करके आप शुद्ध निष्काम होकर औरभी अधिक धर्मको पा लेता है ॥ १८ ॥ ध० ॥ दया करनेका नाम करुणा है। यह धर्मालोकमुख अहिंसाको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषमें दया उत्पन्न हो जाती है वह

यो०॥ अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ २ ॥ ३५ ॥

ध०॥ मैत्री धर्मालोकमुखं सर्वोपाधिकपुण्यक्रियावस्त्वभिभावनतायै संवर्तते ॥ १८ ॥

ध०॥ करुणा धर्मालोकमुखमहिंसायै संवर्तते ॥ १९ ॥

ध०॥ मुदिता धर्मालोकमुखं सर्वारम्भकर्षणतायै संवर्तते ॥ २० ॥

फिर किसी जीवकी हिंसा नहीं करता है और जिसको दीन दुःखी देखता है उसका उपकार करनेमें प्रवृत्त होता है ॥ १९ ॥ ध० ॥ प्रसन्नता और हर्षका नाम मुदिता है। यह धर्मालोकमुख सब आरम्भ अर्थात् कर्मोंकी कर्षणताको उत्पन्न करता है अर्थात् सब योगके अभ्यासके निमित्त कर्मोंको प्रसन्नतासे करनेमें प्रवृत्त करता है जिन कर्मोंके करनेसे चित्त शान्त हो जाता है। जिस पुरुषके चित्तमें प्रसन्नता होती है वह पुरुष कर्मकी सिद्धिको प्राप्त होता है क्योंकि जिसके जीमें दुःखका भाव होता है वह पुरुष दुःखके मारे कर्म करनेमें तत्पर नहीं होता है और विना कर्मके किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती है। इसलिये

मुदिताको जीमें धरना चाहिये ॥ २० ॥ ध० ॥ उपेक्षाका अर्थ यह है कि किसी वस्तुसे न प्रीति करना और न वैर करना, समतामें स्थिर रहना। यह धर्मालोकमुख सब काम अर्थात् विषयभोगोंमें जुगुप्सनता अर्थात् घृणाको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषके जीमें उपेक्षाका वास हो जाता है विषयभोगोंसे उसको घिन हो जाती है और इसलिये विषयभोगोंसे बचकर शुद्ध ब्रह्मचर्यरूप धर्ममें स्थित हो जाता है ॥ शब्द रूप रस गन्ध और स्पर्श इन पांचका नाम विषयभोग है ॥ मैत्री करुणा मुदिता और उपेक्षा चार ब्रह्मविहार कहाते हैं। इन चारमें अत्यन्त स्थित होकर ब्रह्मचारी योगी विहार करते हैं, इन चारोंको मनमें वसाते हैं। देखो पातंजल योगसूत्र। उन सब प्राणियोंमें जो सुखसे संपन्न हैं मैत्रीकी

ध० ॥ उपेक्षा धर्मालोकमुखं कामजुगुप्सनतायै संवर्तते ॥ २१ ॥

यो० ॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनात-

यो० ॥ श्चित्तप्रसादनम् ॥ १ । ३३ ॥ मैत्र्यादिषु बलानि ॥ ३ । २३ ॥

भावना करे और दुःखी प्राणियोंमें करुणाको उत्पन्न करे और पुण्यात्मा प्राणियोंमें मुदिताकी भावना करे और पापात्मा प्राणियोंसे उपेक्षा करे। इस प्रकार भावना करनेसे चित्त शीघ्र शुद्ध हो जाता है और एकाग्रताके पदको पा लेता है ॥ १ ॥ ३३ ॥ जो पुरुष सुखी प्राणियोंमें मैत्रीकी भावना करता है उसको मैत्रीका बल प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार दुःखी प्राणियोंमें करुणाकी भावना करनेसे करुणाके बलको पा लेता है और पुण्य करनेवाले प्राणियोंमें मुदिताकी भावना करके मुदिताके बलको पा लेता है। यह तीन भावना कहाती हैं चौथी उपेक्षाकी भावना नहीं की जाती है इसलिये उपेक्षाका बल नहीं होता है ॥ ३ ॥ २३ ॥ ब्रह्मचर्यकी व्याख्या ॥ ऋषियोंके स्थापित किये हुए चार आश्रम चले आते हैं, ब्रह्मचर्या, गृहस्थचर्या,

वानप्रस्थचर्या और संन्यासचर्या। इनमें मुख्य करके सब चारोंका आदिकारण ब्रह्मचर्या है क्योंकि ब्रह्मचर्यामें जो पुरुष विधिपूर्वक विहार करता है वह सदाको सुखी रहता है॥ देखो ललितविस्तरके प्रथम परिवर्तमें। ब्रह्मचर्यके विहारमें आदिमेंभी सुख है मध्यमेंभी सुख है और अन्तमेंभी सुख है, सुन्दर पदार्थ अर्थात् मोक्षका प्रकाश करनेवाली ब्रह्मचर्याही है, केवल परिपूर्ण और अत्यन्त शुद्ध ब्रह्मचर्यमें स्थित होना चाहिये। यही उपदेश भगवान् बुद्धने सदा किया है॥ देखो पातंजलयोगसूत्र॥ ब्रह्मचर्यामें भली प्रकार स्थित हो जानेसे वीर्य अर्थात् उत्साहका लाभ होता है क्रोधकी निवृत्ति हो जाती है और अत्यन्त क्रोधकी निवृत्ति हो जानेसे दूसरोंको ज्ञान देनेको समर्थ हो जाता है॥ २॥ ३८॥ ब्रह्मचर्यापद दो अर्थोमें आता है दोनोंही

ल०॥ आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं स्वर्थसुव्यंजनं
केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं संप्रकाशयति स्म॥

यो०॥ ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः॥ २।३८॥

अर्थ उपयोगी हैं। पहला अर्थ यह है कि जो पुरुष उपनयनसंस्कारके प्रारम्भसे लेकर पचीस वर्षकी अवस्थापर्यन्त गुरुकुलमें वास करके वेद और शास्त्रोंके अध्ययनमें चित्त लगाता है वह ब्रह्मचारी कहाता है और उसके विहारको ब्रह्मचर्या कहते हैं। जो ब्रह्मचारी अधर्मको अत्यन्त त्यागता हुआ धर्ममें स्थित होता हुआ गुरुकी आज्ञामें रहता हुआ वेदाध्ययनमें चित्तको लगाकर वेदोंको समाप्त करता है वह पुरुष धार्मिक होकर परब्रह्मकी प्राप्तिमें सुखसे प्रवृत्त होता है। इसलिये पहले ब्रह्मचारी बनना चाहिये॥ फिर दूसरा अर्थ यह है कि विद्याध्ययन समाप्त कर जो पुरुष विषयोंसे मनको हटाकर ईश्वरकी प्राप्तिका साधन करता है वहभी ब्रह्मचारी कहाता है, चाहे वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो चाहे वानप्रस्थ हो चाहे संन्यासी हो क्योंकि

वह ब्रह्मकी प्राप्तिके निमित्त चरता है। उसकी चर्याको ब्रह्मचर्या कहते हैं। ब्रह्मपदके दो अर्थ हैं वेद और परमात्मा ॥ जो वनमें नगरके बाहर वास करता है उसको वानप्रस्थ कहते हैं चाहे गृहस्थाश्रमको त्यागके वानप्रस्थ हुआ हो चाहे वेदाध्ययन समाप्त करके विना गृहस्थ हुएही वानप्रस्थ हुआ हो। उसकी चर्याको वानप्रस्थचर्या कहते हैं। जो विना गृहस्थ हुएही वानप्रस्थ हो जाता है वही नैष्ठिक ब्रह्मचारीभी कहाता है ॥ जो तपश्चर्याको पूरा करके ईश्वरका साक्षात्कार करके अहंभाव और ममभावसे पूरा २ रहित होकर वासनाओंके बन्धनसे छूट जाता है वही संन्यासी कहाता है और उसकी चर्याको संन्यासचर्या कहते हैं। चारों वर्ण और चारों आश्रमोंकी चर्चा विस्तारसे मनुस्मृतिमें वर्णित है ॥ क्योंकि इन सब आश्रमोंका मूल वेदाध्ययन है इसलिये ब्रह्मचर्या श्रेष्ठ धर्म है। विना वेदाध्ययन किये विधिपूर्वक ब्रह्मको जानना कठिन है, इसलिये वेदोंको धारण करता हुआ पुरुष ब्रह्मचर्यामें प्रवृत्त होनेवाला उत्तम ब्रह्मचारी है। इस धर्ममें कभी हानिका होना संभव नहीं है। मन और इन्द्रियोंको वशमें करके ईश्वरके दर्शनके निमित्त योग करना चाहिये। इन्द्रियोंका वशमें होना मनके अधीन है इसलिये मनको निरोध करनेका उपाय करना चाहिये। जो जो चेष्टा शरीर और इन्द्रियोंमें उत्पन्न होती हैं उन २ चेष्टाओंके संकल्प पहले मनमें उत्पन्न होते हैं। मनकी गति अति सूक्ष्म होनेसे देखनेमें नहीं आती है जैसे बहुत पतले सौ पत्रे इकट्ठे करके उनमें सुई छेदें तो यह प्रतीत होता है कि सबमें सुई एक संग छिद गई किन्तु ऐसा व्यवहार नहीं है, सुई प्रति-पत्रमें क्रम २ से छिदती है। इसी प्रकार मनकी चेष्टा बहुत पुरुषोंको एक संग होती दृष्ट आती है किन्तु ऐसा व्यवहार नहीं है। मन क्रम २ से सब चेष्टाओंके संकल्पोंको करता है ॥ देखो चरकके इस श्लोकको ॥ यह मनके संकल्पही सब कर्मोंके कारण हैं। पदार्थोंमें और इन्द्रियोंमें दोष नहीं है। जैसे दृष्टान्तको

समझना चाहिये । एक स्थानपर कोई एक स्त्री युवती बैठी हो उसके पास यदि उसका भाई बेटा पिता और पति क्रमसे जावें तो पहले तीन पुरुषोंको काम उत्पन्न नहीं होता है किन्तु चौथे पुरुषको काम उत्पन्न होता है । इसका कारण यह है कि भाईका संकल्प यह होता है कि मेरी बहन है, बेटेका संकल्प यह होता है कि मेरी मा है, पिताका संकल्प यह होता है कि मेरी बेटी है, इसलिये यह संकल्प कामको उत्पन्न नहीं करते हैं, पतिका संकल्प यह होता है कि मेरी स्त्री है इसलिये उसे कामकी चेष्टा हो जाती है । यदि स्त्रीमें वा नेत्रोंमें दोष होता तो चारोंको काम उत्पन्न होना चाहिये था किन्तु ऐसा नहीं होता है इससे विदित होता है कि न पदार्थोंमें दोष है और न इन्द्रियोंमें दोष है दोष केवल चित्तके बुरे संकल्पोंमें है । इसलिये पहले चेष्टा चित्तमें होती है फिर शरीर और इन्द्रियोंमें । इसलिये चित्तकी चेष्टाओंको रोकना चाहिये

च० ॥ सन्तीन्द्रियाणि सन्त्यर्था योगो न च न चास्ति रुक् ।
न सुखं कारणं तस्माद्योग एव चतुर्विधः ॥

इसहीको योग कहते हैं । पहले चित्तकी चेष्टाओंका रुकना पुरुषको असंभव दीखता है किन्तु यह बात नहीं है, चित्तकी वृत्तियां क्रम २ से रोकी जाती हैं । पहले चित्तमेंसे पापके संकल्पोंको निकालकर पुण्यके संकल्पोंको बसाते हैं और वह पुण्यके संकल्पभी पराये अर्थ बसाये जाते हैं इसलिये फिर शनैः २ वैराग्य विचार सत्संग और ईश्वरकी भक्तिके द्वारा वह संकल्पभी शान्त होकर चित्तको निर्विकल्प कर देते हैं जैसे कोई पुरुष कीचमें सना हुआ जलको प्राप्त करके जलसे कीचको धो डालता है और फिर सूर्यके तेजसे वह जलभी सूख जाता है । इसी प्रकार तपस्वी पुण्यके संकल्पोंको बसाकर पापके संकल्पोंको नाश कर देता है और उसकी निष्कामताका तेजस् फिर उस पुण्यकी वासनाकोभी निकालकर निर्विकल्प बना देता है । इसलिये अत्यन्त

ब्रह्मचारी बनकर मनको निष्काम पुण्यमें वसाते हुए तपस्को इकट्ठा करना चाहिये, और उस तपस्से निर्विकल्प होकर सर्वज्ञताका साक्षात्कार करके परम पदको पाना चाहिये । इसलिये ब्रह्मचर्या त्रिकालमें सुखके देनेवाली है ॥ मुमुक्षु ब्रह्मचारीको जो कर्तव्य है उसको चरकग्रन्थके शारीरस्थानके पञ्चम अध्यायसे लेकर संक्षेपसे लिखते हैं ॥ इन सूत्रोंका अर्थ लिखते हैं ॥ जो पुरुष लोकमें लोककी प्रवृत्तिमें दोष देखे उसको चाहिये कि मुमुक्षु बने और मोक्षकी इच्छासे आचार्य अर्थात् सद्गुरुका आश्रय करे॥ १ ॥आचार्यके उपदेशको ग्रहण करे और उस उपदेशका अनुष्ठान करे॥ २ ॥अग्निकी सेवा करे, अग्निहोत्रकाभी अनुष्ठान करे ॥ ३॥ धर्मशास्त्रको भली

च०॥ अथोदयनानि व्याख्यास्यामः ॥ तत्र लोकदोषदर्शिनो मुमुक्षोरादित एवाचार्याभिगमनम् ॥१॥ तस्योपदेशानुष्ठानम् ॥२॥ अग्नेरेवोपचर्या ॥३॥ धर्मशास्त्रान्तगमनम् ॥४॥ तदर्थावबोधः ॥ ५ ॥ तेनावष्टम्भः ॥६॥तत्र यथोक्ताः क्रियाः ॥७॥ सतामुपासनम् ॥ ८ ॥ असंगतिर्दुर्जनेन॥९॥सत्यं सर्वभूतहितमपरुषमनतिकाले परीक्ष्य वचनम्॥१०॥ सर्वप्राणिष्वात्मनीवापेक्षा ॥ ११ ॥

प्रकार पढ़े और सीखे ॥ ४ ॥ उसके अर्थोंका भली प्रकार बोध प्राप्त करे ॥ ५ ॥ उसके अर्थोंके अनुकूल धर्मका आचरण करनेमें स्थित होवे ॥ ६ ॥ उसमें जो क्रिया अनुष्ठान करनेको लिखी हैं उनका अनुष्ठान करे ॥७॥ धार्मिक पुरुषोंका सदा सत्संग करे॥८॥अधार्मिक और दुष्ट पुरुषोंके संगको सदा त्याग करे ॥९॥सदा सत्यवचन मुखसे निकाले और वह वचनभी ऐसा हो कि जो सब जीवोंका हित करनेवाला हो और कठोर न हो और ठीक कालमें अवसरके अनुकूल कहा गया हो और जो भली प्रकार विचारके कहा गया हो ॥ १० ॥ सब प्राणियोंमें अपने समान दृष्टि उत्पन्न करे । सबको अपनासा सुखी और दुःखी जाने और

फिर सबको सुख देवे और दुःख न देवे ॥ ११ ॥ सकल स्त्रीमात्रका विषयभोगादिकी इच्छासे न जीमें स्मरण करे न मनमें संकल्प करे और न उनसे कुछ प्रार्थना करे और न उनसे कुछ बात करे ॥ १२ ॥ सर्व परिग्रह अर्थात् योगकी असाधक निरर्थक वस्तुओंका त्याग करे ॥ १३ ॥ दो कौपीन और एक चादर पहनने और ओढनेको गेरूसे रंगकर रक्खे ॥ (गेरूका रंग पक्का है और मिट्टीका रंग है सुगमतासे मिलता है और वस्त्र मैला नहीं होता है) ॥ १४ ॥ शीतके निवारणके अर्थ एक कन्था (कथरी) कोभी रक्खे और उसको सीनेके लिये सुई डोराभी रक्खे ॥ १५ ॥ शौच और जल आदि लेनेके अर्थ एक जलका पात्र रक्खे ॥ १६ ॥

सर्वासामस्मरणमसंकलपनमप्रार्थनमनभिभाषणं च स्त्रीणाम् ॥१२॥ सर्वपरिग्रहत्यागः ॥ ॥ १३ ॥ कौपीनप्रच्छादनार्थं धातुरागं निवसनम् ॥१४॥ कन्थासीवनहेतोः सूचीपिप्पलकम् ॥ १५ ॥ शौचादानहेतोर्जलकुण्डिका ॥ १६ ॥ दण्डधारणं भैक्षचर्यार्थम् ॥१७॥ भैक्षचर्या प्राणधारणार्थमेककालम् ॥१८॥ अग्राम्यो यथोपपन्नो व्यवहारः ॥१९॥ श्रमापनयनार्थं शीर्णशुष्कपर्णतृणास्तरणोपधानम् ॥२०॥ ध्यानहेतोः कायनिबन्धनम्॥२१॥ वनेष्वनिकेतवासः ॥ २२ ॥ तन्द्रानिद्रालस्यादिकर्मवर्जनम् ॥ २३ ॥

भिक्षा मांगनेको जानेके अर्थ एक दण्ड धारण करे ॥ १७ ॥ प्राणकी रक्षामात्रके लिये भिक्षा एक कालमें मांगा करे ॥१८॥ ग्रामीण मूर्ख पुरुषोंकासा कोई व्यवहार न करे । जो व्यवहार अर्थात् आचार आदि कर्म करे सो योग्य होवे ॥१९॥श्रम अर्थात् थकान दूर करनेके अर्थ गिरे हुए और सूखे पत्ते और तृणोंका बिछौना और उपधान (तकिया) बनावे ॥ २० ॥ ध्यान लगानेके अर्थ शरीरको आसनका अभ्यास करावे ॥२१॥ वनोंमें और वृक्षोंके नीचे वास करे अपना कोई घर न बनावे ॥ २२ ॥ तन्द्रा निद्रा और आलस्यको और

इसी प्रकारके अन्य कर्मोंकोभी त्याग करे ॥ २३ ॥ इन्द्रियोंके अर्थ शब्द स्पर्श रूप रस गन्धमेंसे मनकी प्रीति और वैरभावको हटावे । किसी शब्दादि विषयसे न प्रीति करे और न शब्दादि सुनकर घबरावे ॥२४॥ सोना बैठना चलना देखना भोजन करना सत्संग आदि करना और सब अंगोंकी प्रत्येक चेष्टाको करना इत्यादि कामोंमें स्मृतिपूर्वक प्रवृत्ति करे । इस बातकी सदा स्मृति रक्खे कि क्या मुझको करना चाहिये और क्या न करना चाहिये ॥ २५ ॥ यदि कोई सत्कार करे वा स्तुति करे वा निन्दा करे वा अनादर करे तो सह लेवे । न सुखी होवे और न दुःखी होवे ॥ २६ ॥ भूख पिलास परिश्रम थकान शीत उष्ण वात

इन्द्रियार्थेष्वनुरागोपतापनिग्रहः ॥ २४ ॥ सुप्तस्थितगतप्रेक्षिताहारविहारप्रत्यंगचेष्टादिकेष्वारम्भेषु स्मृतिपूर्विका प्रवृत्तिः ॥ २५ ॥ सत्कारस्तुतिगर्हावमानक्षमत्वम् ॥ २६ ॥ क्षुत्पिपासायासश्रमशीतोष्णवातवर्षासुखसंस्पर्शसहत्वम् ॥ २७ ॥ शोकदैन्यमानोद्वेगमदमानलोभरागेर्ष्याभयक्रोधादिभिरसंचलनम् ॥ २८ ॥ अलंकारादिषूपसर्गसंज्ञा ॥ ॥ २९ ॥ लोकपुरुषयोः सर्गादिसामान्यावेक्षणम् ॥ ३० ॥ कार्यकालार्थमुभयम् ॥ ३१ ॥

वर्षा और असुख स्पर्शोंको अर्थात् दुःखके देनेवाले स्पर्शोंकोभी सह ले । क्रोध न करे ॥ २७ ॥ शोक दीनता अहंकार उद्वेग मद मान लोभ राग ईर्ष्या भय और क्रोध आदिसे दुःखी होकर आसनसे चलायमान न होवे ॥ २८ ॥ शरीरको अलंकार अर्थात् शोभा करनेवाले कर्मोंको उपद्रव जाने ॥ २९ ॥ लोक और पुरुषकी समताको देखा करे अर्थात् जैसे लोकमें ब्रह्मा आदि देवोंका वास है इसी प्रकार शरीरमें आत्मा आदि तत्त्वोंका वास है और जैसे लोककी उत्पत्ति और नाश आदि होता है इसी प्रकार शरीरकाभी ॥ (यह लोक पुरुषका सामान्यावेक्षण चरकके उसी अध्यायमें विस्तारसे वर्णित है) ॥ ३० ॥ कार्य और कालके निमित्त

दोनोंही लोक और शरीर उपयोगी हैं ॥ ३१ ॥ योगका अभ्यास करनेमें चित्तको न उखाड़े अर्थात् योगका अभ्यास करनेमें निरंतर चित्तको लगावे ॥ ३२ ॥ चित्तशुद्धि उत्साह और मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ बुद्धि धृति और स्मृतिके बलको उत्पन्न करे ॥ ३३ ॥ इन्द्रियोंको वशमें करे, चित्तको स्वरूपमें स्थित करे, आत्माको अपने स्वरूपमें स्थित करे ॥ ३४ ॥ पुनः पुनः शरीरके अवयवोंकी संख्या करता रहे जिससे यह बात जीमें निश्चित बनी रहे कि यह शरीर पृथिवी जल तेजस् वायु और आकाश और रस रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा और शुक्र और मल और मूत्रका बना हुआ है। यह शरीर आत्मा नहीं है

योगारम्भे सततमनिर्वेदः ॥ ३२ ॥ सत्वोत्साहापवर्गाय धीधृतिस्मृतिबलादानम् ॥ ३३॥ नियमनमिन्द्रियाणां चेतसि चेतस आत्मन्यात्मनश्च ॥ ३४ ॥ धातुभेदेन शरीरावयवसंख्यानमभीक्ष्णम् ॥ ३५ ॥ सर्वकारणवद्दुःखमस्वमनित्यमित्यवग्रमः ॥ ३६ ॥ सर्वप्रवृत्तिष्वघसंज्ञा ॥ ३७ ॥ सर्वसंन्यासे सुखमित्यभिनिवेशः ॥ ३८ ॥ एष मार्गोऽपवर्गाय ॥ ॥ ३९ ॥ अतोऽन्यथा बध्यते ॥ ४० ॥ इत्युदयनानि ॥

आत्मा शरीरसे विलक्षण और अत्यन्त शुद्ध है ॥ ३५ ॥ यह निश्चय करे कि सब वस्तु जो कार्यरूप है वह दुःखस्वरूप है पराधीन है और अनित्य है ॥ ३६ ॥ संसारकी सब प्रवृत्तियोंको पापरूप जाने ॥ ३७ ॥ सर्व वस्तुके संन्यासमें सुख है ऐसा निश्चय करे। मनके संकल्पविकल्पोंका संन्यास मुख्य संन्यास है ॥ ॥ ३८ ॥ यह मोक्षका मार्ग है ॥ ३९ ॥ इसको छोडकर और दूसरा मार्ग बन्धनका है। जो पुरुष इन कर्मोंको छोडकर अन्यथा कर्म करता है वह बन्धनमें पडता है उत्पन्न होता है मरता है आवागमनसे नहीं छूटता है ॥ ४० ॥ यह मोक्षमार्गके साधन कहे गये ॥ २१ ॥ ४० ॥ जो वस्तु सदा स्थिर न रहे

उसे अनित्य कहते हैं। देखने और जानने और विचारनेका नाम प्रत्यवेक्षा है। इन्द्रलोकका नाम कामलोक है। ब्रह्माके लोकका नाम रूपलोक है और रूप्यलोकभी है। ब्रह्माकेही एक लोकका नाम आरूप्य लोक है। जो देवता कामलोकमें वास करते हैं उनका नाम कामावचर देव है। जो देवता रूपलोकमें वास करते हैं उनका नाम रूपावचर देव है। इन देवोंकी चर्चा अष्टसाहस्रिकामें प्रायः बहुत स्थानोंमें आती है। सब संसारको अनित्य देखने और जाननेसे सब वस्तुसे वैराग्य हो जाता है और स्वर्गलोकको पा लेनेकीभी इच्छा नहीं रहती है ॥ २२ ॥ ध० ॥ सब संसारके सुखोंकोभी दुःखही जाननेका नाम दुःख-प्रत्यवेक्षा है यह धर्मालोकमुख सब मनके सांसारिक प्रणिधानोंका समुच्छेदन अर्थात् नाश करता है॥

ध०॥ अनित्यप्रत्यवेक्षा धर्मालोकमुखं कामरूप्यारूप्यरागसमतिक्रमाय संवर्तते ॥२२॥

ध०॥ दुःखप्रत्यवेक्षा धर्मालोकमुखं प्रणिधानसमुच्छेदनाय संवर्तते ॥ २३ ॥

यो०॥ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ २।१२ ॥

यो० सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ २।१३ ॥

(पातञ्जल योगसूत्र देखो) पुरुष पुण्य और पापरूप कर्मोंको करता है, वह कर्माशय दो प्रकारका है। एक कर्म इस प्रकारका होता है जो दृष्ट जन्म अर्थात् वर्तमान जन्ममेंही सुख और दुःखको उत्पन्न करता है और दूसरा इस प्रकारका होता है जो अदृष्टजन्म अर्थात् आगामी जन्ममें सुख और दुःखको उत्पन्न करता है। और इस कर्माशयके कारण क्लेश अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह होते हैं॥ इन क्लेशोंका वर्णन आगे लिखते हैं ॥ २ । १२ ॥ जबतक कर्माशयके मूल कारण क्लेश बने रहते हैं तबतक उन कर्मोंका विपाक अर्थात् फलभी प्राप्त होता है। वह फल तीन प्रकारका है अर्थात् उस कर्मविपाकमें जाति आयुः और

भोग नियत हो जाते हैं। पुरुषके सारे कर्मोंके संचयके पलटेमें जाति अर्थात् जन्म नियत हो जाता है कि मनुष्य होगा वा गौ भैंस आदि जीवोंमें उत्पन्न होगा, ब्राह्मण होगा वा क्षत्रिय आदि वर्णोंमें उत्पन्न होगा। आयुः नियत हो जाती है कि इतने कालतक इस शरीरमें सुख दुःखको भोगेगा। सुखदुःखका भोग नियत हो जाता है॥ २ । १३ ॥ और वे जन्म आयुः और भोग जो पुण्यवाले होते हैं तो ह्लाद अर्थात् सुखको उत्पन्न करते हैं और जो पापवाले होते हैं तो परिताप अर्थात् दुःखको उत्पन्न करते हैं ॥ २।१४ ॥ किन्तु विवेकी पुरुष उन सब सुख और दुःखोंको दुःखही जानता है। क्योंकि विना प्राणियोंको दुःख पहुँचाये सुखका भोगना असंभव है और रागद्वेषकी निवृत्ति नहीं होती है इसलिये सुखकी तृष्णासे ऐसे २ कर्म फिर

यो०॥ ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ २।१४ ॥

यो०॥ परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥२।१५॥

यो०॥ अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः ॥ २ । ३ ॥

यो०॥ अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ २ । ४ ॥

करता है जो उसको फिर बाध लेते हैं इसलिये विवेकी पुरुष उन सुखोंका परिणाम अर्थात् अन्त दुःखही जानता है और सुखभोगके कालमेंभी ताप अर्थात् दुःखको देखता है और सुखके भोगसे उत्पन्न हुए २ चित्तके संस्कारोंकोभी दुःखका देनेवाला जानता है और इसी प्रकार सत्व रजस् और तमस् इन गुणोंकी वृत्तियोंका विरोध आपसमें देखकरभी उसको दुःखही भासता है यहां तक कि संतोष सुखकोभी मोक्ष-सुखकी अपेक्षासे वह दुःखही जानता है ॥ २ । १५ ॥ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पांच क्लेश कहाते हैं ॥ २ । ३ ॥ अस्मिता आदि चार क्लेश अविद्यारूपी खेतमें उत्पन्न होते हैं। जिस

चित्तमें अविद्याका वास है उस चित्तमें अस्मिता आदि चार क्लेश उत्पन्न होते हैं। और इन क्लेशोंकी वृत्ति सब कालमें समान नहीं रहती है। कभी तो यह क्लेश सोये हुए रहते हैं जैसे बालकोंमें काम सोता है युवा अवस्थामें जाग जाता है। कभी यह क्लेश तनु अर्थात् दुर्बल हो जाते हैं, योगका अभ्यास करनेसे यह क्लेश घट जाते है। कभी एक क्लेश एक कालमें उदार हो जाता है और दूसरे कालमें दब जाता है। इस प्रकार इन क्लेशोंकी वृत्ति सर्वकालमें समान नहीं रहती है ॥२।४॥ अविद्याका लक्षण यह है कि अनित्य वस्तुको नित्य जानना, अपवित्र वस्तुको पवित्र जानना, दुःखरूप वस्तुको सुख मानना और अनात्मवस्तुको आत्मा मानना। ऐसे अन्यथा बोधको अविद्या कहते हैं। जगत्के पदार्थ अनित्य हैं दुःखरूप हैं

यो०॥ अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ २ । ५ ॥

यो०॥ दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ २ । ६ ॥

यो०॥ सुखानुशयी रागः ॥ २ । ७ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ २ । ८ ॥

यो०॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ २ । ९ ॥

अपवित्र हैं और आत्मासे भिन्न हैं इनको यथावत् जानना ज्ञानका काम है। इसलिये यहां चार धर्मा-लोकमुखोंमें इन पदार्थोंको यथावत् जाननेका फल कहा है ॥ २ । ५ ॥ दृक्शक्ति अर्थात् पुरुष और दर्शनशक्ति अर्थात् बुद्धिको एक स्वरूप जानना अस्मिता क्लेश कहाता है ॥ २ । ६ ॥ सुखको जाननेवाले पुरुषका जो सुखमें और सुखके साधनमें प्रीति और लोभ होता है उसे राग और लोभ कहते हैं ॥ २ । ७ ॥ दुःखको जाननेवाले पुरुषकी जो दुःखमें और दुःखके साधनमें निवृत्तिकी इच्छा होती है उसको द्वेष और क्रोध कहते हैं ॥ २ । ८ ॥ सब प्राणियोंके जीमें यह इच्छा होती है कि मैं जीऊं और मरूं नहीं और

यह इच्छा स्वभावसे होती है और विद्वान्‌कोभी होती है। इसी इच्छाका नाम अभिनिवेश और मोह है ॥ २ । ९ ॥ इन क्लेशोंकी सूक्ष्मवृत्ति तो ध्यानसे दूर होती है ॥ २ । ११ ॥ और वे दग्धबीजके समान होकर योगीके चित्तके लीन होनेपर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥ २।१० ॥ और स्थूलवृत्ति इन क्लेशोंकी क्रिया योगके करनेसे दूर हो जाती हैं ॥२।२॥ तपस् स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधानका नाम क्रियायोग है। इनकी चर्चा पीछे कर चुके हैं ॥२।१ ॥ यह क्रियायोग समाधियोगमें भावना बढानेके अर्थ है। इस क्रियायोगका प्रथम अभ्यास करनेसे समाधियोगकी भावनाकी शक्ति हो जाती है ॥२।२॥ समाधियोगकी चर्चा समाधिके वर्णनमें लिखेंगे ॥ दुःखकी व्याख्यामें दुःख और दुःखका कारण और दुःखकी निवृत्ति और दुःखकी

योग॥ ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ २।११ ॥ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ २।१० ॥

योग॥ तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ २।१ ॥

योग॥ स हि क्रियायोगः समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ । २ ॥

निवृत्तिके उपायकी चर्चा करनी चाहिये। ललितविस्तरमें इन चारोंको आर्यसत्यके नामसे लिखा है। दुःखका नाम दुःखही है। जाति जरा व्याधि और मरणका नाम दुःख है अर्थात् जन्म लेना बूढ़ा हो जाना रोगी हो जाना और मर जाना यह सब दुःख है। जिस वस्तुसे चित्त द्वेष करे उसीका संग होजाना यहभी दुःख है जिस वस्तुसे चित्त प्रीति करे उसीका वियोग हो जाना यहभी दुःख है। जिस वस्तुको चित्त चाहे और यदि वह वस्तु न मिले तो यहभी दुःख है। संक्षेपसे शरीर चित्त वासना आदिका संग होना इत्यादि सबही दुःख है ॥ दुःखके कारणका नाम दुःखसमुदय है। रागद्वेषरूप तृष्णाही सब दुःखोंको उत्पन्न करती है ॥ दुःखकी निवृत्तिका नाम दुःखनिरोध है। रागद्वेषरूप तृष्णाके दूर हो जानेपर सब दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती

है ॥ दुःखोंकी निवृत्तिके उपायका नाम दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपत् है। सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाक् सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि इन आठ अंगोंका नाम आर्याष्टांगमार्ग है और इन्हींका नाम दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपत् है। इन आठ साधनोंसे दुःखनिरोधकी प्राप्ति होती है। पातंजलयोगसूत्रमें इन आठों अंगोंका नाम योगांग है। इनकी चर्चा विस्तारसे आगे की जावेगी ॥ सांख्यकारिकामें दुःखके तीन भेद किये हैं। आध्यात्मिक और आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख दो प्रकारका है। शारीरक और मानस। वातपित्त और कफ दोषोंके कारणसे जो दुःख ज्वर आदि शरीरमें उत्पन्न होवें उन दुःखोंका नाम शारीरक है। काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेष ईर्ष्या भय आदि मानसदुःख कहाते हैं। यह दुःख उन पांचों क्लेशोंके अंतर्गत हैं जो पीछे

यो० ॥ हेयं दुःखमनागतम् ॥ २ । १६ ॥

कह चुके हैं। जो दुःख मनुष्य, सिंह, वृक, सर्प आदि जन्तुओंके कारणसे उत्पन्न होवें उन दुःखोंका नाम आधिभौतिक है। और जो दुःख वात वर्षा बिजली ओले आदिके कारणसे उत्पन्न होवें उन दुःखोंका नाम आधिदैविक है ॥ (अब विस्तारसे पातंजलयोगसूत्र देखो) जो दुःख बीत गया वह तो बीतही चुका उसका दूर करना नहीं बनता है और जो दुःख वर्तमान क्षणमें भोगा जा रहा है उसका दूर करनाभी नहीं बनता है इसलिये योगी अनागत अर्थात् न आये हुए दुःखको हेय जानता है। जो दुःख आगेको आनेवाला है उसही दुःखको हेय कहते हैं। हेयका अर्थ त्यागनेके योग्य है। वह अनागत दुःखही योगीकोही क्लेश प्रतीत होता है और साधारण पुरुषको प्रतीत नहीं होता है। इसलिये योगमें दुःखका हेय नाम है ॥ २ । १६ ॥ दुःखके कारणको हेयहेतु कहते हैं। और दुःखकी निवृत्तिको हान कहते हैं इसीका

नाम कैवल्य है। और दुःखकी निवृत्तिको हानोपाय कहते हैं॥ दुःखका लक्षण कहा गया अब दुःखके कारणको बताते हैं॥ द्रष्टा पुरुष और दृश्य प्रकृति आदि सब पदार्थोंका संयोग हेयका हेतु है॥ २।१७॥ दृश्य द्रष्टा और संयोगका लक्षण कहते हैं॥ सत्वगुण प्रकाशस्वरूप है। रजोगुण क्रियास्वरूप है। तमोगुण स्थितिस्वरूप है। सत्वगुणमें ज्ञान और प्रकाश है। रजोगुणमें नाना प्रकारकी चेष्टा और क्रिया हैं। और तमोगुणमें अज्ञान और मोह और स्थिति है। यह तीनों गुण पंचमहाभूत और ग्यारह इन्द्रियोंके स्वरूपमें परिणत हुए दृश्य कहाते हैं। यह दृश्य आत्मा अर्थात् पुरुषके भोग और अपवर्गके अर्थ है। यह गुण पुरुषको भोग दिखाकर क्रमसे विरक्त करके अपवर्ग अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति करा देते हैं॥ २।१८॥

यो०॥ द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः॥ २।१७॥

यो०॥ प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्॥ २।१८॥

यो०॥ विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि॥ २।१९॥

आकाश वायु अग्नि जल और पृथिवी इनका नाम पांच महाभूत है और इनको विशेष कहते हैं। श्रोत्र त्वचा नेत्र जिह्वा और नासिका यह पांच ज्ञानइन्द्रिय कहाती हैं। वाणी हस्त पाद गुद और लिंग यह पांच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं। और ग्यारहवीं इन्द्रिय मन है। इन ग्यारहको विशेष कहते हैं। पंचमहाभूत पंचतन्मात्र अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस और गन्धसे बने हैं। और ग्यारह इन्द्रिय अहंकारसे बनी हैं। इन सोलहका नाम विशेष है॥ पांच तन्मात्र शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध अहंकारसे बने हैं और अहंकार महत्तत्व अर्थात् बुद्धिसे उत्पन्न हुआ है। इन छःका नाम अविशेष है॥ महत्तत्व अर्थात् बुद्धिका नाम लिंगमात्र है और प्रकृतिका नाम अलिंग है। और इस प्रकृतिको प्रधान और मूलप्रकृति और मायाके नामसेभी पुकारते

हैं ॥ और इन सब चौवीस तत्वोंका नाम गुण पर्व है ॥ २।१९ ॥ पुरुष आत्मा और द्रष्टा दृशिमात्र और दृक्शक्ति यह सब नाम पुरुषके हैं। पुरुष सब मायाका साक्षी है इसलिये इसका नाम द्रष्टा है और यह द्रष्टा केवल दृशिमात्र है अर्थात् दृक्शक्ति है देखनेवाला है किन्तु सब उन विशेषणोंसे रहित है जो विशेषण स्थूल पदार्थोंमें होते हैं। यह पुरुष अत्यन्त शुद्धभी है तोभी प्रत्यय अर्थात् बुद्धिके गुणोंके अनुकूल देखता है इसलिये उससे विलक्षणभी उन गुणोंके समान भासता है सुखी दुःखी प्रतीत होता है ॥ २ । २० ॥ इसही पुरुषके निमित्त दृश्यका स्वरूप है ॥ २ । २१ ॥ वह दृश्य उस पुरुषके प्रति नष्ट हो जाता है जो पुरुष कृतार्थ अर्थात् मुक्त हो जाता है। किन्तु वह दृश्य मुक्त पुरुषके प्रति नष्ट हुआ २ भी नष्ट नहीं होता है क्यों

यो०॥ द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः॥२।२०॥तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा॥२।२१॥

यो०॥ कृतार्थं प्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २ । २२ ॥

यो०॥ स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २ । २३ ॥ तस्य हेतुरविद्या॥२।२४॥

यो०॥ तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशः कैवल्यम् ॥ २ । २५ ॥

कि उसका संवन्ध और पुरुषोंसे रहता है और पुरुष असंख्यात वर्णन किये गये हैं ॥२।२२॥ पुरुषका नाम स्वामिशक्ति है और दृश्यका नाम स्वशक्ति है। इन दोनोंका संग होनेसे भोगकी प्रतीति होती है और संग निवृत्त हो जानेसे भोगकी निवृत्ति अर्थात् मोक्ष हो जाती है। जब पुरुषका संग दृश्यसे होता है तो भोग प्रतीत होते हैं और जब पुरुषको स्वरूपकी प्रतीति हो जाती है तबही संगकी निवृत्ति हो जाती है ॥ २ । २३ ॥ इस संयोग अर्थात् संगका कारण अविद्या है। मिथ्या ज्ञानका नाम अविद्या है। विद्याके अभावको अविद्या नहीं कहते हैं ॥२।२४॥ अविद्याके दूर हो जानेसे द्रष्टा और दृश्यका संयोग दूर हो जाता है और संयोग दूर

हो जानेसे दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती है और इस निवृत्तिको हान कहते हैं और इस हानको पुरुषकी कैवल्य अर्थात् मोक्ष कहते हैं ॥२।२५॥ इस हानका उपाय शुद्ध विवेकख्याति अर्थात् स्वरूपको जान लेना है ॥ ॥२।२६॥इस विवेकख्यातिवाले अर्थात् ज्ञानी पुरुषकी प्रज्ञा सात भूमिकी होती है ॥ १ दुःखको जान लिया अब जाननेको शेष नहीं है । २ दुःखका हेतु क्षीण हो गया अब क्षीण होनेको शेष नहीं है । ३ निरोधसमाधिमें दुःखकी निवृत्तिका साक्षात्कार कर लिया । ४ विवेकख्यातिरूप दुःखकी निवृत्तिके उपायकी भावना पूरी हो गई । इन चारोंको प्रज्ञाविमुक्ति कहते हैं ॥ ५ बुद्धिका आधिकार पूरा हो गया । ६ गुणभी अपने कारणमें लीन हो गये अब इन लीन गुणोंकी फिर उत्पत्ति नहीं हो सकती है क्यों कि अब कुछ उत्पन्न होनेका प्रयोजन

यो०॥ विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २ । २६ ॥ तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा॥२।२७॥

यो०॥ योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २ । २८ ॥

ध०॥ अनात्मप्रत्यवेक्षा धर्मालोकमुखमात्मानभिनिवेशनतायै संवर्तते ॥ २४ ॥

न रहा । ७ अब इस अवस्थामें पुरुष गुणोंके सम्बन्धसे रहित होकर स्वरूपमात्रसे प्रकाशक निर्मल और केवली हो गया । इन तीनोंको चित्तविमुक्ति कहते हैं ॥ २ । २७ ॥ योगांगका अनुष्ठान करनेसे अशुद्धिका नाश हो जानेसे ज्ञानका प्रकाश होता है और पूर्णज्ञान हो जानेपर विवेकख्याति कहाती है ॥ २ । २८ ॥ इन योगके अंगोंकी चर्चा आगे करेंगे ॥ २३ ॥ ध० ॥ सब संसारको अनात्म वस्तु जाननेका नाम अनात्मप्रत्यवेक्षा है । संसार आत्मतत्वसे विरुद्ध गुणवाला है यह धर्मालोकमुख आत्मानाभिनिवेशनताको उत्पन्न करता है । अभिनिवेशपनका नाम अभिनिवेशनता है । किसी वस्तुमें मोह करनेका नाम अभिनिवेश है । कोई पुरुष बुद्धि चित्त आदि तत्वोंको पुरुष मानकर संतोष कर लेते हैं ऐसा करनेसे परतत्वको नहीं

पहुँचते हैं। इसलिये जो पुरुष प्रकृति बुद्धि आदि सबको अनात्मवस्तु जानता है वह पुरुष प्रकृति आदिको आत्मा न मानकर यह अभिनिवेश नहीं करता है कि प्रकृति वा बुद्धि वा चित्त ही आत्मा है इसलिये अविद्याका नाश करके शुद्ध विद्याको पा लेता है ॥ २४ ॥ ध० ॥ जो पुरुष संसारके सब अनित्य पदार्थोंको अशुभ अर्थात् अशुचि अपवित्र जानता है तो उसका यह अशुभप्रत्यवेक्षारूप धर्मालोकमुख सकल काम अर्थात् विषयभोगोंके वितर्कोंकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है। जो पुरुष संसारके सब पदार्थोंको अत्यन्त अशुद्ध जानता है वह संसारके विषयभोगोंमें नहीं प्रवृत्त होता है और उसके जीमें विषयभोगोंके वितर्क उत्पन्न नहीं होते हैं। हिंसादि वितर्ककी चर्चा पीछे कर चुके हैं ॥ पीछे अविद्याके पातंजलसूत्रमें चार लक्षण कहे थे कि अनित्य दुःख अनात्म और अशुचि वस्तुमें नित्य सुख आत्म

ध०॥ अशुभप्रत्यवेक्षा धर्मालोकमुखं कामवितर्कप्रहाणाय संवर्तते ॥ २५ ॥

ध०॥ ह्रीर्धर्मालोकमुखमध्यात्मोपशमाय संवर्तते ॥ २६ ॥

और शुचि ख्यातिका नाम अविद्या है, जिस पुरुषकी यह अविद्या दूर होने लगती है उसको यथावत् वस्तुओंका बोध होता है—वही चारों बोध यथावत् होयं तो धर्मालोकमुख कहाते हैं। अर्थात् संसारकी अनित्य वस्तुओंको अनित्य जानना, संसारकी दुःखरूप वस्तुओंको दुःख जानना, संसारकी अनात्मवस्तुओंको अनात्मा जानना, और संसारकी अशुचि अर्थात् अशुभ वस्तुओंको अशुभ जानना। इनके फल कहे गये ॥ २५ ॥ ध० ॥ लज्जाके दो भेद हैं एक तो भीतरसे लज्जा होना और दूसरे बाहरसे लज्जा होना। भीतरी लज्जाका नाम ह्री है। यह धर्मालोकमुख अध्यात्मपाप अर्थात् मानस दोषोंकी शान्तिको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषमें लज्जा होती है वह पापोंसे बच जाता है। पापोंसे बचनेकेकारण पापों और

दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है ॥ २६ ॥ ध० ॥ बाहरी लज्जाका नाम अपत्राप्य है इसीको अपत्रपा कहते हैं। यह धर्मालोकमुख बाहरी पाप और दोषोंके प्रशमको अर्थात् निवृत्तिको उत्पन्न करता है। लज्जा होनेसे पुरुष बाहरी पापोंसे बचकर पापोंकी निवृत्तिको पा लेता है ॥ २७ ॥ ध० ॥ सब वस्तुको शान्त देखना, किसीमें दोषदर्शी न होना शान्तप्रत्यवेक्षा कहाती है। यह धर्मालोकमुख अनुनय अर्थात् दीनताकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषमें शान्तप्रत्यवेक्षारूप गुण उत्पन्न होता है उसकी दीनता और किसीसे प्रार्थना आदि करना निवृत्त हो जाता है ॥ २८ ॥ ध० ॥ सत्य सच्चका नाम है। यह धर्मालोकमुख देव और मनुष्योंकी विसंवादनता अर्थात् विसंवादकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है। विसंवादका अर्थ अमर-

ध०॥ अपत्राप्यं धर्मालोकमुखं बहिःप्रशमाय संवर्तते ॥ २७ ॥

ध०॥ शान्तप्रत्यवेक्षा धर्मालोकमुखमनुनयानूहनतायै संवर्तते ॥ २८ ॥

ध०॥ सत्यं धर्मालोकमुखं देवमनुष्याविसंवादनतायै संवर्तते ॥ २९ ॥

ध०॥ भूतं धर्मालोकमुखमात्माविसंवादनतायै संवर्तते ॥ ३० ॥

कोशमें विप्रलम्भ लिखा है और उसकी माहेश्वरी टीकामें वंचनायुक्त आभाषणका अर्थ किया है। दूसरोंको बहकानेके लिये निन्दापूर्वक जो चर्चा की जावे उसको विसंवाद कहते हैं। जो पुरुष सत्यधर्मका आश्रय कर लेता है वह न किसी देवताकी निन्दा करता है और न किसी मनुष्यकी और न किसीभी जीवकी और किसीको बहकाताभी नहीं है। इसलिये सत्यधर्मका आश्रय करनेसे देव और मनुष्योंके विषयमें विसंवाद दूर हो जाता है ॥ २९ ॥ ध० ॥ वासनाकी निवृत्ति और मोक्षका नाम भूत है। यद्यपि यह भूत शब्द अनेक अर्थोंमें आता है किन्तु ललितविस्तर और अष्टसाहस्रिकामें भूत शब्द वासनाकी निवृत्तिका

नाम है क्यों कि भूत, भावित और लब्ध एक अर्थमें आते हैं, योगकी भावना करनेसे वासनाकी निवृत्ति भावित और प्राप्त होती है । और इसको भूतकोटिभी कहते हैं । वासनाकी निवृत्तिके साक्षात्कारको भूतकोटिका साक्षात्कार कहते हैं । और इसका नाम आश्रवक्षयसाक्षात्कारभी है । यह धर्मालोकमुख आत्माके विषयमें विसंवादको दूर करता है । जो पुरुष इस मोक्षधर्मका आश्रय लेता है वह पुरुष आत्माकी निन्दा नहीं करता है और किसीको नहीं बहकाता है यह कहके कि आत्मा नहीं है । इस धर्मके आश्रयसे पूर्ण-नास्तिक भावकी निवृत्ति होती है इसलिये इस मोक्षधर्ममें निश्चय करना चाहिये ॥ ३० ॥ ५० ॥ वासनाकी व्याख्या ॥ वासना संस्कार आश्रव इनका एकही अर्थ है पुरुष जो कर्म करता है उस कर्मके अनुकूल चित्तमें वासना इकट्ठी हो जाती हैं । एक शरीरके किये हुए कर्मोंका फल तो दूसरे शरीरमें मिल

यो०॥ कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ४ । ७ ॥

जाता है किन्तु वासना चित्तमें अनेक जन्मोंकी बहुत कालसे इकट्ठी होती चली आती हैं । योगका अभ्यास करनेसे इन सबकी निवृत्ति हो जाती है तब पुरुषको मोक्ष (कैवल्य) प्राप्त हो जाती है ॥ देखो योगसूत्रको । कर्म चार प्रकारका होता है । पापकर्म, पापपुण्यकर्म, पुण्यकर्म, और अपुण्यापापकर्म । दुष्ट पुरुषोंके कर्म पाप-कर्म होते हैं जो हिंसा आदिसे उत्पन्न होते हैं । साधारण पुरुषोंके कर्म पापपुण्यरूप होते हैं । कुछ पाप और कुछ पुण्य कर्मोंके मिला हुआ करनेसे साधारण पुरुषोंके कर्म दोनों प्रकारके होते हैं । केवल तपस् स्वाध्याय और ध्यानका अभ्यास करनेवाले पुरुषोंके कर्म केवल पुण्यरूप होते हैं और उन योगियोंके कर्म अपुण्यापा-परूप होते हैं जो योगी चरमभविक हैं अर्थात् जो वर्तमान शरीरमें अवश्य मुक्त हो जावेंगे और जिनके क्लेश दूर हो गये हैं । इसका कारण यह है कि वह योगी पापकर्मोंका आचरण नहीं करते हैं और पुण्यके

फलको त्याग देते हैं । इसलिये निष्काम कर्म योगीको नहीं बांध सकते हैं पुण्यकर्मका नाम शुक्ल है और पापकर्मका नाम कृष्ण है और अशुक्लाकृष्णका अर्थ अपुण्यापाप कर्म है ॥ ४ । ७ ॥ फिर उन कर्मोंसे उन कर्मोंके विपाक अर्थात् फलके अनुकूलही वासनाओंकी अभिव्यक्ति अर्थात् प्रकाश होता है वह सब कर्म मिलकर जिस प्रकारका फल उत्पन्न करनेके योग्य होते हैं उसी प्रकारकी वासना बनती चली जाती है ॥ ४।८॥ यदि जाति देश और कालका व्यवधानभी हो जावे तोभी वासना पूर्ववासनाओंके अनुकूलही होती है जैसे कोई धार्मिक पुरुष किसी पापकर्मके विपाकसे किसी पशु आदिकी योनिमें चला जावे तोभी फिर उस चोलेको भोगकर मनुष्यचोलेमें आनेपर फिर पूर्व वासनाओंका उदय हो जावेगा । और चाहे वह पुरुष किसी देशान्तरमेंभी चला जावे तोभी फिर पूर्वदेशमें आनेपर पूर्ववासनाओंका उदय हो जावेगा । और चाहे

यो०॥ ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ४ । ८ ॥ जातिदेशकालव्यवहि-
यो०॥ तानामप्यानंतर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ४ । ९ ॥ तासामनादित्वं चाशिषो
यो०॥ नित्यत्वात् ॥४।१०॥ हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥४।११॥

जितना काल हो जावे तोभी वासनाओंका उदय हो जाता है जैसे स्वर्गमें गये हुए देवोंका कल्प व्यतीत हो जानेपरभी फिर पूर्व वासनाओंका उदय हो जाता है और वह देव फिर देवयोनियोंसे पतित हो जाते हैं । क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनों एकही रूपवाले हैं ! जैसे संस्कार होते हैं स्मृतिभी वैसीही हो जाती है । और संस्कार वासनाओंके अनुकूलही होते हैं इसलिये वासनाओंके अनुकूल फिर स्मृति हो आती है ॥ ४ । ९ ॥ और वह वासना अनादि है । क्योंकि यह आशीर्वचन नित्यही चित्तमें होता है कि मैं जीऊं और मरूं नहीं ॥ ४ । १० ॥ हेतु फल आश्रय और आलम्बनसे वासनाओंका संग्रह हो रहा है इसलिये

इनके दूर हो जानेसे वासनाओंका अभाव हो जाता है। हेतु कारणका नाम है जैसे धर्मसे सुख होता है और अधर्मसे दुःख होता है। सुखसे राग होता है और दुःखसे द्वेष होता है। फिर राग और द्वेषके कारणसे इस प्रकारके कर्मोंको करता हुआ प्रवृत्त होता है जिससे धर्म और अधर्म उत्पन्न हो जाते हैं। उनसे फिर सुख दुःख और राग द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार यह षडरचक्र अर्थात् छः अरवाले चक्रके समान चक्र चलता रहता है। कारणसे जो उत्पन्न होवे उसे फल कहते हैं अर्थात् वासनाओंका फल। वासनाका आश्रय वह चित्त है जो चित्त निरुद्ध नहीं हुआ है। जिसको पायकर वासनाओंका उदय हो जावे उसे आलम्बन कहते हैं। इस प्रकार जब वासनाओंका आश्रय चित्तनिरुद्ध हो जाता है तो वासनाभी निरुद्ध

ध०॥ **धर्मचरणं धर्मालोकमुखं धर्मप्रतिसरणतायै संवर्तते ॥ ३१ ॥**

यो०॥ **अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ २ ।॥ ३५ ॥**

यो०॥ **सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ २ । ३६ ॥**

होकर फिर उत्पन्न नहीं होती है ॥ ४ । ११ ॥ ३० ॥ ध० ॥ धर्मके आचरण करनेका नाम धर्मचरण है। धर्मके प्रति जाने और पहुँचनेका नाम धर्मप्रतिसरणता है। धर्मचरणरूप धर्मालोकमुख धर्मकी प्राप्तिको उत्पन्न करके धर्मका समीपवर्ती बनाकर धार्मिक बना देता है। पीछे यमनियमके दश अंगोंका आचरण करनेको उत्तम धर्म वर्णन कर चुके हैं। यहां उनका फल पृथक् २ लिखते हैं॥ देखो योगसूत्र॥ जो पुरुष अहिंसाधर्ममें पूर्णस्थित हो जाता है उसके समीप स्वाभाविक वैरवाले जीवोंकाभी आपसमें वैरभाव निवृत्त हो जाता है॥ २ । ३५ ॥ जो पुरुष सत्यधर्ममें पूर्ण स्थित हो जाता है उसके वचन यथावत् फलने लगते हैं यदि वह किसीसे कह दे कि तू धार्मिक हो जा तो वह तुरन्त धार्मिक हो जावेगा और जो वह

योगसूत्र:

योगसूत्र॥ अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ २ । ३७॥ ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां

योगसूत्र॥ वीर्यलाभः ॥ २ । ३८ ॥ अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥ २ । ३९ ॥

योगसूत्र॥ शौचात्स्वांगे जुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ २ । ४० ॥ सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्ये-

योगसूत्र॥ न्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानिच ॥२।४१॥ सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥२।४२॥

किसीसे कह दे कि तू स्वर्गको प्राप्त हो जा तो वह स्वर्गको अवश्य प्राप्त हो जावेगा। सत्य बोलनेवालेकी वाणी निष्फल नहीं होती है ॥ २ । ३६ ॥ जो पुरुष अस्तेयमें पूर्ण स्थित हो जाता है कभी किसीकी विना दी हुई वस्तुको नहीं ग्रहण करता है तो सर्व दिशाओंमें स्थित उत्तम २ रत्न उसका उपस्थान करते हैं अर्थात् उसके पास आते हैं ॥ २ । ३७ ॥ जब पुरुष ब्रह्मचर्यमें पूर्ण स्थित होता है तो उसको अत्यन्त वीर्य उत्साह और शक्तिका लाभ होता है ॥ २ । ३८ ॥ जब पुरुष अनावश्यक और योगके साधनमें विघ्न डालनेवाली वस्तुओंका संग्रह नहीं करता है तो उसके जीमें इसका बोध उत्पन्न हो जाता है कि मैं क्या था, क्या हूं, क्या होऊंगा, जन्म कहां था, कहां होगा, इत्यादि ॥ २।३९ ॥ शरीरको पवित्र रखनेसे अपनेही शरीरमें घृणा उत्पन्न हो जाती है और जो अत्यन्त अशुद्ध शरीर हैं उनका संग निवृत्त हो जाता है बार २ अपने शरीरको यह धोता है किन्तु अशुद्धही पाता है और नौ द्वारोंसे मलमूत्र आदि चूताही देखता है तो इस कायासे मोह हट जाता है ॥ २ । ४० ॥ और शौचमें पूर्ण स्थिर हो जानेसे चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तकी शुद्धिसे मनकी प्रसन्नता होती है। और फिर चित्त एकाग्र हो जाता है। और चित्त एकाग्र होनेसे इन्द्रियें वशमें होती हैं। और फिर आत्माके दर्शनकी योग्यता हो जाती है ॥ २ । ४१ ॥ संतोषसे वह सुख मिलता है जिससे बढ़कर उत्तम सुख मोक्षसुखको छोड़कर और नहीं है ॥ २ । ४२ ॥ तपस्का

अनुष्ठान करनेसे अशुद्धि अर्थात् रजस् और तमस् आवरण दूर हो जाते हैं। और फिर चित्त शुद्ध हो जानेसे शरीर और इन्द्रियोंकी अणिमादि सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं। इन सिद्धियोंकी चर्चा सिद्धिकी व्याख्यामें करेंगे ॥ २। ४३ ॥ स्वाध्याय करनेसे इष्ट देवताकी प्राप्ति हो जाती है और देव ऋषि और सिद्ध महात्माभी स्वाध्यायशील पुरुषके दर्शनको आते हैं और उसका कार्यभी बना देते हैं ॥ २।४४ ॥ ईश्वरप्रणिधानके बलसे समाधिकी सिद्धि हो जाती है ॥ २। ४५ ॥ ३१ ॥ ध०॥ बुद्ध अर्थात् ईश्वर अथवा बुद्ध पुरुष और संघ अर्थात् महात्मा संन्यासी भिक्षुक और धर्म अर्थात् शुद्ध वैदिक अहिंसाधर्मकी जो पुरुष शरण

यो०॥ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ २। ४३ ॥ स्वाध्यायादिष्टदेवतासं-

यो०॥ प्रयोगः ॥ २। ४४ ॥ समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ २। ४५ ॥

ध०॥ त्रिशरणगमनं धर्मालोकमुखं त्र्यपायसमतिक्रमाय संवर्तते ॥ ३२ ॥

अ०॥ व्यसनान्यशुभं दैवं विपदित्यनयास्त्रयः ॥

ध०॥ कृतज्ञता धर्मालोकमुखं कृतकुशलमूलाविप्रणाशाय संवर्तते ॥ ३३ ॥

लेता है, इन तीनकी जो शरणागत बनता है उस पुरुषके तीन अपायोंका समतिक्रम अर्थात् नाश हो जाता है। अपायका अर्थ दुःख है और अपायका अर्थ मिथ्या उपायकाभी है, उसीको अनयभी कहते हैं अमरकोशमें तीन अनय इस प्रकार लिखे हैं। हिंसा करना, मद पीना, जुआ खेलना, स्त्रियोंका अतिसेवन करना, यह चार व्यसन कहाते हैं। अशुभ दैव बुरी प्रारब्धका नाम है। दुःखका नाम विपद् हैं। यह तीनों अनय अर्थात् अपाय ईश्वर आदिकी शरणागत हो जानेसे नष्ट हो जाते हैं ॥३२॥ध०॥ किये हुए उपकारको जाननेका नाम कृतज्ञता है। पुण्यकर्मका नाम कुशलमूल है। न नाश होनेका नाम

अविप्रणाश है । जो पुरुष दूसरोंके किये हुए उपकारोंको नहीं भूलता है और उसका अनुगृहीत होता है तो उस पुरुषका किया हुआ पुण्य नष्ट नहीं होता है । कृतघ्नतासे किया हुआ पुण्यभी नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥ ध० ॥ किये हुए उपकारको जानने और माननेका नाम कृतवेदिता है । दूसरेको बड़ा माननेका नाम पराभिमन्यता है । कृतवेदिता धर्मालोकमुख पराभिमन्यताको उत्पन्न करता है । जो पुरुष दूसरेके किये हुए उपकारको मानता है वह उपकार करनेवाले पुरुषके अनुग्रहको जानकर उसको बड़ा मानता है और उसकी स्तुति करता है ऐसा करनेसे उसका कर्म सफल होता है ॥ ३४ ॥ ध० ॥ जो पुरुष आत्माको जानता है उसका नाम आत्मज्ञ है । आत्मज्ञ होनेका नाम आत्मज्ञता है । यह धर्मालोकमुख आत्माके अनु-

ध०॥ कृतवेदिता धर्मालोकमुखं पराभिमन्यतायै संवर्तते ॥ ३४ ॥

ध०॥ आत्मज्ञता धर्मालोकमुखमात्मानुकर्षणतायै संवर्तते ॥ ३५ ॥

ध०॥ सत्वज्ञानता धर्मालोकमुखं परापत्समतायै संवर्तते ॥ ३६ ॥

कर्षणको उत्पन्न करता है । जो पुरुष आत्माको जानता और मानता है वह पुरुष आत्माके अनुकूल चित्तकी वृत्तिमें लगाता है । जिस प्रकार आत्माका हित और कल्याण हो उस प्रकार चित्तकी वृत्तिको उत्पन्न करके वैसाही व्यवहार करता है ॥ ३५॥ध०॥ सब जीवोंमें समान आत्माके ज्ञानका नाम सत्वज्ञानता है । दूसरोंकी आपद् अर्थात् दुःखको समान देखनेका नाम परापत्समता है । सत्वज्ञानता धर्मालोकमुख परापत्समताको उत्पन्न करता है । जो पुरुष सब जीवोंमें समान आत्मा जानता है वह सब जीवोंको सुख दुःख समान होता हुआ देखकर सबके उपकार करनेमें तत्पर होता है । किसीको दुःख नहीं देता है अपने समान सबको सुख देनेकी चेष्टा करता है ॥ ३६ ॥ ध० ॥ धर्मको जो जानता है उसे धर्मज्ञ कहते हैं । धर्मज्ञ बननेका नाम

धर्मज्ञता है। मोक्ष आदि परमार्थ धर्मोंका नाम धर्म है। सांसारिक धर्मोंका नाम अनुधर्म है। धर्मज्ञता धर्मालोकमुख धर्म और अनुधर्मकी प्रतिपत्ति अर्थात् ज्ञान और प्राप्तिको उत्पन्न करता है। जो पुरुष धर्मज्ञ होता है धर्मशील बनता है वह सर्वथा सब परमार्थ और सांसारिक धर्मोंको जानकर उनको पा लेता है॥३७॥ध०॥ किस कालमें किस कर्मको करना चाहिये और किस कर्मको करनेका अब काल है यह जो जानता है उसे कालज्ञ कहते हैं। कालज्ञ बननेका नाम कालज्ञता है। अमोघका अर्थ सफल है और दर्शनका अर्थ साक्षात्कार है। कालज्ञता धर्मालोकमुख साक्षात्कारकी सफलताको उत्पन्न करता है। जो पुरुष कर्मोंके करनेके योग्य कालोंको जानता है वह ठीक योग्य कालमें आत्मदर्शनका साक्षात्कार करनेके लिये यत्न करता है और

ध०॥ धर्मज्ञता धर्मालोकमुखं धर्मानुधर्मप्रतिपत्त्यै संवर्तते॥ ३७॥

ध०॥ कालज्ञता धर्मालोकमुखममोघदर्शनतायै संवर्तते॥ ३८॥

ध०॥ निहतमानता धर्मालोकमुखं ज्ञानताप्रतिपूर्त्यै संवर्तते॥ ३९॥

ध०॥ अप्रतिहतचित्तता धर्मालोकमुखमात्मबलानुरक्षणतायै संवर्तते॥ ४०॥

उसका साक्षात्कार सफल होता है॥३८॥ध०॥ जिसका मान हत हो जावे अर्थात् नष्ट हो जावे उसे निहतमान कहते हैं। निहतमान होनेका नाम निहतमानता है। निहतमानता धर्मालोकमुख ज्ञानकी प्रतिपूर्ति अर्थात् पूर्णताको उत्पन्न करता है। जो पुरुष अपने मानको तोड़ देता है वह पुरुष सर्वथा पूर्णज्ञानकी भूमिपर पहुंचता है। मान आजानेसे पुरुष अल्पज्ञतामें रह जाता है अथवा श्रावकभूमिमें गिर जाता है बुद्धभूमिपर नहीं पहुंचता है जो बुद्धभूमि पूर्णज्ञानकी भूमि है। मानका अर्थ यह है कि अपने आपको बड़ा जानना और दूसरोंको तुच्छ जानना। यह अहंकारका भेद है॥ ३९॥ ध०॥ जिस पुरुषका चित्त तपस् आदि करते २

प्रतिहत अर्थात् दुःखी और व्याकुल न होवे, यह जीमें न समझे कि इतना काल मुझको तपस् आदि करते हुआ अब वृथा कौन करे अब मैं इसको छोड़ दूं, उस पुरुषको अप्रतिहतचित्त कहते हैं। अप्रतिहत-चित्त बननेका नाम अप्रतिहतचित्तता है। यह धर्मालोकमुख आत्मबलकी रक्षाको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषका चित्त प्रतिहत नहीं होता है उसके आत्मबलकी रक्षा रहती है और चित्तके टूट जानेसे श्रद्धा आदि हीन हो जाती हैं और आत्मबल घट जाता है ॥ ४० ॥ ध० ॥ उपनाहका अर्थ बन्धनका है बन्धनके न होनेका नाम अनुपनाह है। यह धर्मालोकमुख अकृत्य अर्थात् कर्मकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषके सांसारिक बन्धन जीसे टूट जाते हैं तो उसको कार्य करनेको नहीं दीखता है। सांसारिक कार्योंसे अवकाश

ध०॥ **अनुपनाहो धर्मालोकमुखमकृत्याय संवर्तते ॥ ४१ ॥**

ध०॥ **अधिमुक्तिर्धर्मालोकमुखमविचिकित्सापरमतायै संवर्तते ॥ ४२ ॥**

ध०॥ **अव्यापादो धर्मालोकमुखं व्यापादवितर्कप्रहाणाय संवर्तते ॥ ४३ ॥**

होनेसे परमार्थमें पूर्ण प्रवृत्ति होती है। संसारके कृत्योंका बहुत होना परमार्थमें जानेसे रोकता है इसलिये सांसारिक बन्धनोंको तोड़कर सावकाश हो परमार्थमें प्रवृत्ति करना योग्य है ॥ ४१ ॥ ध० ॥ परमार्थ-सम्बन्धी सर्वज्ञता और समाधि आदि पदार्थोंके विषयमें जीके संदेहोंकी निवृत्ति हो जानेको अधिमुक्ति कहते हैं। संदेहके न होनेका अर्थात् निश्चयका नाम अविचिकित्सा है। अधिमुक्ति धर्मालोकमुख पूर्ण संदेहकी निवृत्ति अर्थात् निश्चयमें परमता अर्थात् परायणता और तत्परताको उत्पन्न करता है। जिसकी पूरी २ श्रद्धा संदेह आदिके दूर हो जानेसे हो जाती है वह कभी धर्मसे चलायमान नहीं होता है और निश्चयमें तत्पर रहता है ॥ ४२ ॥ ध० ॥ किसी जीवसे द्रोह वैरभाव करनेकी मनमें चिन्ता होवे तो उसे व्यापाद

कहते हैं। जब व्यापादके संकल्प जीसे निकल जाते हैं तो उसको अव्यापाद कहते हैं अर्थात् किसीसेभी वैर विरोध जीमें न करना। यह धर्मालोकमुख द्रोहके वितर्कोंका प्रहाण अर्थात् नाश कर देता है। जीसे जब किसी वस्तुसे द्वेष नहीं रहता है तो सबसे समान प्रीति हो जाती है जो धर्मकी सहायक है ॥ ४३ ॥ ध० ॥ शरीरमें अहंभाव और ममता होनेका नाम मोह है। मोहके न होनेका नाम अमोह है। यह धर्मालोकमुख सब अज्ञानके नाशको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषका मोह दूर हो जाता है शरीर आदि पदार्थोंमें ममता नहीं रहती है तो उसका अहंकार और ममकार (ममता) दूर हो जाते हैं। अहंकार और ममकारही बड़े भारी अज्ञानको उत्पन्न कर रहे हैं। इसलिये मोहकी निवृत्तिसे सब अज्ञान

ध०॥ अमोहो धर्मालोकमुखं सर्वाज्ञानधमनतायै संवर्तते ॥ ४४ ॥

ध०॥ धर्मार्थिकता धर्मालोकमुखमर्थप्रतिसरणतायै संवर्तते ॥ ४५ ॥

ध०॥ धर्मकामता धर्मालोकमुखं लोकप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ ४६ ॥

दूर हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ ध० ॥ जो पुरुष धर्महीको अर्थ जानता है और सकल कर्मोंको अनर्थ जानता है उसको धर्मार्थी कहते हैं धर्मार्थी होनेका नाम धर्मार्थिकता है। यह धर्मालोकमुख अर्थका प्रतिसरण अर्थात् परमार्थकी प्राप्ति करा देता है। धर्मार्थी पुरुष और अन्यकर्मोंको अनर्थ जानता हुआ और धर्मको अर्थ जानता हुआ धर्मकाही प्रतिसरण करता है धर्मकीही ओर चलता है और धर्मके समीप पहुंचने लगता है ॥ ४५ ॥ ध० ॥ धर्मकी प्राप्तिकी कामनाका नाम धर्मकामता है। यह धर्मालोकमुख लोकके प्रतिलम्भ अर्थात् प्राप्तिको उत्पन्न करता है। जो पुरुष धर्मकी कामनाको जीमें रखता है उसको इस लोककीभी प्राप्ति होती है और ज्यों २ वह धर्मकी कामनासे धर्मका आचरण करेगा त्यों २ ही स्वर्गलोक और

मुक्तलोककोभी प्राप्त करेगा। धर्मकी कामनासे इस लोकके सुख प्राप्त होते हैं लोकमें सत्कार और यशस् बढ़ता है ॥ ४६ ॥ ध० ॥ ज्ञान और विद्याका नाम श्रुत है। शास्त्रकोभी श्रुत कहते हैं। जो धर्मका उपदेश सुना जाय वहभी श्रुत कहाता है। पर्येष्टिका अर्थ ढूंढनेका है। विद्या ज्ञान और धर्मके उपदेशको ढूंढनेका नाम श्रुतपर्येष्टि है यह धर्मालोकमुख योनिको शोधन करनेवाले धर्मके विचारको उत्पन्न करता है। जो पुरुष ज्ञान और विद्या उपदेशसम्बन्धी शास्त्रोंको ढूंढकर पढ़ता और विचारता है उसको आवागमनसे छुटानेवाले धर्मके विषयमें विचार उत्पन्न हो जाता है ॥४७॥ध०॥ सब पदार्थोंको सम्यक् अर्थात् ठीक २ प्रयोग अर्थात् काममें लानेका नाम सम्यक्प्रयोग है। यथोचितफलकी प्राप्तिका नाम सम्यक्प्रतिपत्ति है।

ध०॥ श्रुतपर्येष्टिर्धर्मालोकमुखं योनिशोधनधर्मप्रत्यवेक्षणतायै संवर्तते ॥ ४७ ॥

ध०॥ सम्यक्प्रयोगो धर्मालोकमुखं सम्यक्प्रतिपत्त्यै संवर्तते ॥ ४८ ॥

ध०॥ नामरूपपरिज्ञानं धर्मालोकमुखं सर्वसंगसमतिक्रमाय संवर्तते ॥ ४९ ॥

ध०॥ हेतुदृष्टिसमुद्घाटो धर्मालोकमुखं विद्याधिमुक्तिप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ ५० ॥

जो पुरुष सब धर्मका आचरण और सब पदार्थोंका प्रयोग यथावत् रीतिसे करता है उसको उन सब कर्मोंका फलभी यथावत् रीतिसे प्राप्त होता है। जिस कर्मकी विधि ठीक होती है उसका फल ठीक उत्पन्न होता है॥ ॥ ४८ ॥ ध० ॥ नामरूपके ज्ञानको नामरूपपरिज्ञान कहते हैं। यह धर्मालोकमुख सब प्रकारके संगोंकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषको सब पदार्थोंके नाम और रूपका यथावत् ज्ञान हो जाता है उसका सब पदार्थोंसे संग छूट जाता है। सब लौकिक पदार्थोंके नाम और रूपको अनित्य और मिथ्या जानकर उनसे जी हट जाता है और केवल आत्मतत्त्वमें स्थित हो जाता है ॥ ४९ ॥ ध० ॥ हेतु और तर्कसे किसी

वस्तुको सिद्ध करनेका नाम हेतुदृष्टि है। हेतुदृष्टिको तोड़ देनेका और धर्ममें श्रद्धा करके ऋषि और बुद्ध पुरुषोंके वचनको सत्य माननेका नाम हेतुदृष्टिसमुद्घाट है। यह धर्मालोकमुख सब शुद्ध विद्या और ज्ञानके विषयमें निश्चयकी प्राप्तिको उत्पन्न करता है। क्यों कि सब पदार्थोंका बोध.हेतु और तर्कसे नहीं हो सकता है और सर्वथा अदृष्ट पदार्थोंका बोध तो विना सत्पुरुषोंके वचनमें श्रद्धा किये और विना प्रज्ञाचक्षुःको पाये होही नहीं सकता है इसलिये जो हेतुदृष्टिको तोड़ देता है तो विद्या और प्रज्ञाके विषयमें संदेहकी अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है और संदेह न रहनेसे श्रद्धा होती है और श्रद्धासे साधन और साधनसे प्रज्ञाकी प्राप्ति होती है ॥ ५० ॥ ध० ॥ रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञानका नाम पंचस्कंध है इन पांचों स्कन्धोंके ज्ञानमें कुशलताका नाम स्कन्धकौशल्य है। यह धर्मालोकमुख सब दुःखोंके वास्तव ज्ञानको उत्पन्न करता है।

ध०॥ स्कन्धकौशल्यं धर्मालोकमुखं दुःखपरिज्ञानतायै संवर्तते ॥ ५१ ॥

दुःखकी चर्चा पीछे कर चुके हैं। संसारके सब दृश्यमात्र पदार्थका नाम रूप है। जो देखनेमें आवे उसे दृश्य कहते हैं और उसीको रूपभी कहते हैं। यह सब पदार्थ अनित्य और दुःखको उत्पन्न करनेवाले हैं। सुखदुःखका अनुभव जो मनमें होता है उसको वेदना कहते हैं। यहभी दुःखका स्वरूप है क्यों कि लौकिक सब सुखभी दुःखसे मिले हुए दुःखमेंही गिने गये हैं। शब्दमात्रका नाम संज्ञा है। यहभी दुःखका स्वरूप है क्यों कि वास्तव सुख देनेवाली निर्विकल्पताकी बाधक है। मनकी वासनाओंका नाम संस्कार है। यही संस्कार बारबार जन्म और मरणको उत्पन्न करते हैं इसलिये यह दुःखका स्वरूप हैं सर्वज्ञताके न होनेपर अल्पज्ञताकी दशामें पदार्थोंका वास्तव ज्ञान नहीं होता है और यह पुरुष पदार्थोंके मिथ्या ज्ञानको कल्पित कर लेता है। इस प्रकारके अविद्यासे उत्पन्न हुए २ सब मिथ्या ज्ञानोंका नाम विज्ञान कहलाता है। यहभी

दुःखस्वरूप है। इन पांच स्कन्धोंके विचारमें कुशलता जब हो जाती है तो सब संसारके मिथ्या ज्ञानको और मिथ्या ज्ञानसे उत्पन्न हुए २ पदार्थोंको विचारवान् पुरुष दुःख जानता है और दुःखका ज्ञान यथावत् हो जानेसे उस दुःखको छोडनेका और दूर करनेका उपाय करता है ॥ ५१ ॥ ध० ॥ पृथिवी जल तेजस् वायु आकाश और विज्ञान इन छःका नाम धातु है। पहले पांच तत्त्व महाभूतके नामसे प्रसिद्ध हैं। विज्ञान महत्तत्त्वका नाम है जिसको बुद्धि कहते हैं। इन छः धातुओंकी समताको देखनेका नाम धातुसमता है। जो इनको सम अर्थात् समान जानता है वह धातुसमतामें स्थित हुआ २ समुदयप्रहाण[1] अर्थात् कारणकी

ध०॥ **धातुसमता धर्मालोकमुखं समुदयप्रहाणाय संवर्तते ॥ ५२ ॥**

ध०॥ **आयतनापकर्षणं धर्मालोकमुखं मार्गभावनतायै संवर्तते ॥ ५३ ॥**

निवृत्तिको प्राप्त हो जाता है। जैसे पृथिवी जल तेजस् वायु और आकाश तत्त्व त्यागनेके योग्य हैं इसी प्रकार महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धिभी जो प्रकृतिका कार्य है त्यागनेके योग्य है। विज्ञानकी उत्पत्ति अविद्यासे लिखी है इसलिये विज्ञान अविद्यारूप बुद्धिका नाम है ॥ ५२ ॥ ध० ॥ श्रोत्र (कान), त्वच् (त्वचा), नेत्र (आंख),

---

१ समुदयका अर्थ सम्यक् प्रकार उदय होना है। दुःखोंके समुदयको समुदय कहते हैं इसकी चर्चा ललितविस्तरमें इस प्रकार है। अविद्याके होनेसे संस्कार उत्पन्न होते हैं। संस्कारोंके होनेसे विज्ञान उत्पन्न होता है। विज्ञानके होनेसे नामरूप उत्पन्न होता है। नामरूपके होनेसे षडायतन उत्पन्न होता है। षडायतनके होनेसे स्पर्श उत्पन्न होता है। स्पर्शके होनेसे वेदना उत्पन्न होती है। वेदनाके होनेसे तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णाके होनेसे उपादान उत्पन्न होता है। उपादानके होनेसे भव उत्पन्न होता है। भवके होनेसे जाति उत्पन्न होती है। जाति अर्थात् जन्मके होनेसे जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपाय और आशा इत्यादि दुःख उत्पन्न होते हैं। यह दुःखका समुदय कहाता है। इसकी निवृत्तिको समुदयप्रहाण कहते हैं।

रसना (जीभ), घ्राण (नासिका ' नाक), और मनस् इन छः इन्द्रियोंका नाम आयतन है इनके द्वारा किसी वस्तुका प्रत्यक्ष रीतिसे बोध होता है। इनका अपकर्षण करना अर्थात् इनको इनके विषयोंसे रोककर खैंच लेना और हटाय लेना आयतनापकर्षण कहाता है। यह धर्मालोकमुख योगके अष्टांगमार्गकी भावनाको पूरा कर देता है। जो पुरुष इन छः इन्द्रियोंके विषयोंको भोगता है वह अष्टांगमार्गकी भावनाको नहीं पूरा कर सकता है क्यों कि विषयोंमें प्रवृत्त हुए २ इन्द्रिय और चित्त एकाग्र नहीं होते हैं इसलिये योगकी भावना पूरी नहीं होती है। इसलिये इन आयतनोंका अपकर्षण अर्थात् इन्द्रिय और मनका विषयोंसे हटाना

ध०॥ अनुत्पादक्षान्तिर्धर्मालोकमुखं निरोधसाक्षात्क्रियायै संवर्तते ॥ ५४ ॥

अष्टांगमार्गकी भावनाको पूरा कर देता है ॥ ५३ ॥ ध० ॥ कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुए हैं सब अपने स्वरूपमें अत्यन्त शुद्ध स्थित हैं सब पदार्थ स्वभावसे शुद्ध हैं। ऐसी भावनाको अनुत्पाद कहते हैं और इस भावनाका अभ्यास करते २ जब ऐसी क्षान्ति प्राप्त हो जाती है कि किसी वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा जीमें नहीं रहती और न किसी वस्तुके दूर करनेकी इच्छा रहती है तो सब प्रकारकी इच्छाद्वेषरूपतृष्णाके निवृत्त हो जानेसे अनुत्पादक्षान्ति प्राप्त हो जाती है। इस धर्मालोकसे चित्तके निरोधको साक्षात्कार करनेमें आ जाता है जब ऐसी क्षान्ति आ जाती है तब चित्तके निरोधका साक्षात्कार हो जाता है। फिर और कुछ

---

१ ललितविस्तरमें निरोधकी चर्चा इस प्रकार है। अविद्याके दूर होनेसे संस्कारोंका निरोध हो जाता है। संस्कारोंके दूर होनेसे विज्ञानका निरोध हो जाता है। विज्ञानके दूर होनेसे नामरूपका निरोध हो जाता है। नामरूपके दूर होनेसे षडायतनका निरोध हो जाता है। षडायतनके दूर होनेसे स्पर्शका निरोध हो जाता है। स्पर्शके दूर होनेसे वेदनाका निरोध हो जाता है। वेदनाके दूर होनेसे तृष्णाका निरोध हो जाता है। तृष्णाके दूर होनेसे उपादानका निरोध हो जाता है। उपादानके दूर होनेसे भवका निरोध हो जाता है। भवके दूर होनेसे

निरोध करनेको शेष नहीं रहता है ॥ भावना ॥ वस्तु चाहे जिस दशामें वर्तमान होवे किन्तु जिस प्रकारका भाव उसमें किया जाता है उसी प्रकारका फल उससे प्राप्त होता है। जैसे स्वप्नमें स्त्रीके अभावमेंभी चित्तकी भावना होनेसे शरीरसे शुक्र (बीज) का पात हो जाता है । और जैसे अंधकारमें पड़ी हुई रस्सीमें सर्पकी भावना करनेसे शरीरमें कम्प भय आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार विष आदि घातक पदार्थोंमेंभी शुद्ध भावना करनेसे शुद्ध फल प्राप्त होता है। इस विषयमें प्रह्लाद और मीराबाई भक्तोंकी कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है॥ इसलिये संसारके सब पदार्थोंमें जो पुरुष शुद्ध भावना करता है तो उस पुरुषका राग द्वेष सर्वथा निकलकर

ध०॥ **चत्वारि सम्यक्प्रहाणानि धर्मालोकमुखं सर्वाकुशलधर्मप्रहाणाय सर्वकुशलप्रतिपूर्त्यै संवर्तते ॥ ५५ ॥**

चित्त शुद्ध हो जाता है और चित्त शुद्ध हो जानेसे प्रज्ञाकी प्राप्ति हो जाती है। उससे फिर सब पदार्थोंको यथावत् जान लेता है और योगका अभ्यास पूर्ण करके निरोधका साक्षात्कार कर लेता है॥५४॥ध०॥दुःख आदिकी निवृत्तिका नाम प्रहाण है और इसीको हानभी कहते हैं। ठीक २ प्रहाणका नाम सम्यक्प्रहाण है। यह चार हैं। यह चारों प्रहाण सारे अकुशल धर्म अर्थात् पापकर्मोंके नाशको उत्पन्न करते हैं और सब कुशल पुण्यकी प्रतिपूर्ति अर्थात् पूरी २ पूर्णताको उत्पन्न करते हैं। जो पुरुष चारों प्रहाणोंको कर लेता है उसके

जातिका निरोध हो जाता है। जाति अर्थात् जन्मके दूर होनेसे जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपाय और आशा आदि दुःखोंका निरोध हो जाता है। यह दुःखोंका निरोध कहाता है । इस प्रकार बारह प्रकारके निरोधोंके साक्षात्कारको निरोधसाक्षात्कार कहते हैं ॥

१ यह चार सम्यक्प्रहाण कहाते हैं। सर्व पापनिवृत्ति अर्थात् सब पापोंको नाश करना। सर्व पुण्य संपत्तिकी प्राप्ति अर्थात् पुण्यरूप संपत्तिको इकट्ठा करना। प्राप्त प्रज्ञाकी रक्षा करना अर्थात् विघ्न आदि उत्पन्न होनेसे प्रज्ञाकी रक्षा करना। प्रज्ञामें सम्पूर्णतासे परिजय प्राप्त करना अर्थात् पूर्ण प्रज्ञापारमिताको उत्पन्न करना ॥

सकल पाप तो नष्ट हो जाते हैं और सब पुण्यका पूर्ण उदय हो जाता है ॥ आगे ध्यानकी चर्चामें चार ध्यान दिये हैं उन्हींको यहांभी समझना चाहिये । वितर्कप्रहाण, विचारप्रहाण, सुखप्रहाण और दुःखप्रहाण यह चार प्रहाण चार ध्यानोंमें आते हैं ॥ ५५ ॥ ध० ॥ सिद्धिका नाम ऋद्धि है । सिद्धिके चार चरण हैं इसलिये उनको चार ऋद्धिपाद[1] कहते हैं । यह धर्मालोकमुख शरीर और चित्तको लघु अर्थात् वशीभूत निःस्पृह बना देता है । जिस पुरुषको सिद्धि प्राप्त हो जाती है उसका शरीर लघु हो जाता है शरीरका आलस्य नष्ट हो जाता है और शरीर वशीभूत हो जाता है । और इसी प्रकार चित्तभी लघु हो जाता है ।

ध०॥ **चत्वार ऋद्धिपादा धर्मालोकमुखं कायचित्तलघुत्वाय संवर्तते ॥ ५६ ॥**

यो०॥ **जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ॥ ४ । १ ॥ तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥४।६॥**

सब वस्तुओंसे राग द्वेष रूप स्पृहा और इच्छा दूर हो जाती है । स्वरूपमें स्थित होनेमें सहायता होती है । समाधिका अभ्यास करनेकी शक्ति हो जाती है ॥ **सिद्धिकी व्याख्या** ॥ देखो पातंजल योगसूत्र ॥ पांच प्रकारसे सिद्धि उत्पन्न होती है । जन्मसे, ओषधिसे, मन्त्रसे, तपसे और समाधिसे । जन्मसे जो सिद्ध होते हैं उनको जातिस्मरभी कहते हैं । उनको पूर्व जन्मोंकी स्मृति होती है और देवलोकोंमें सब देवोंको जन्मसे सिद्धि होती है ॥ ओषधि खानेसे सिद्धि हो जाती है । इस प्रकारकी ओषधियोंको रसायन कहते हैं । इनकी

---

१ स्वयंभूपुराणमें चार ऋद्धिपादोंका वर्णन है । ऋद्धि अर्थात् सिद्धि पानेके मुख्य उपाय ऋद्धिपाद कहाते हैं । वह यह हैं । १ वीर्यशक्ति अर्थात् उत्साहका बल । २ विवेकशक्ति अर्थात् निर्णय करनेका बल और सर्व संदेहकी निवृत्ति और पूर्ण विश्वास । ३ भावनाशक्ति अर्थात् संसारके पदार्थोंको मिथ्या जानकर सर्वज्ञताकी भावना करना । ४ ध्यानशक्ति अर्थात् चित्तको ध्यानमें लगाना यह सब उपाय सिद्धिको उत्पन्न करनेवाले हैं इसलिये ऋद्धिके पाद कहाते हैं ॥

चर्चा सुश्रुत आयुर्वेदमें रसायन अध्यायोंमें लिखी है ॥ एक ओषधिका नाम सोम है। वह चौवीस प्रकारकी होती है। उसकी उत्पत्ति कैलास हिमालय मानससरोवर आदि स्थानोंमें लिखी है। सोम नाम चन्द्रमाःका है। जैसे चन्द्रमाः एक २ कला शुक्लपक्षमें बढ़ता है और कृष्णपक्षमें एक २ कला घटता है इसी प्रकार वह ओषधिभी शुक्लपक्षमें बढ़ती है अर्थात् शुक्लपक्षमें उस ओषधिमें प्रति दिन एक २ पत्ता निकलता है और फिर कृष्णपक्षमें एक २ पत्ता प्रतिदिन गिर पड़ता है। इस प्रकार उस ओषधिमें पौर्णमासीके दिन पन्द्रह पत्ते होते हैं। अमावास्याके दिन कोई पत्ता नहीं रहता है। उस ओषधिमें किसी २ में कन्द होता है। कन्द लेकर सोने वा चांदीकी सुईसे छेद कर दूध चुआकर पी लेते हैं और फिर अस्सी दिनतक केवल दूधको पीते हैं. कुटीमें रहते हैं। इन दिनोंमें पुराने रोम केश नख और दन्त गिर जाते हैं और नवीन रोम केश नख और दन्त

मी०॥ **अथातो धर्मजिज्ञासा ॥ १ । १।१ ॥ चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ॥ १ । १ । २॥**

निकल आते हैं। शरीर फिर युवा अत्यन्त सुन्दर हो जाता है आयुः दशसहस्र वर्षकी हो जाती है वेद शास्त्र सब कण्ठ उपस्थित हो जाते हैं। इन्द्रिय दिव्य हो जाती हैं। इन्द्रके समान प्रकाश होता है। किन्तु वह ओषधि केवल धार्मिक पुरुषको प्राप्त हो सकती है अधार्मिकको नहीं। वेदोंमें अनेक मंत्र इसी सोमकी स्तुतिमें लिखे हैं और इसी सोमके पानको सोमयज्ञ कहते हैं। जिन दिनोंमें सब लोग धार्मिक थे उन दिनोंमें इस सोमके पीनेकी रीति थी इस सोमयज्ञमें किसी प्रकारकी हिंसा नहीं होती है। और हिंसा तो वेदोंमें किसी यज्ञमेंभी करनेको नहीं लिखी है। क्यों कि मीमांसादर्शनके प्रारम्भमेंही धर्मका लक्षण लिखनेमें इसकी चर्चा आई है ॥ शवरस्वामीने इन सूत्रोंकी व्याख्या करनेके समय अपने भाष्यमें लिखा है. कि धर्मको जाननेकी इच्छा करनी चाहिये। चोदना अर्थात् विधि जिसका लक्षण है ऐसे अर्थरूप कर्मको धर्म कहते हैं। जो

कर्म ब्राह्मण आदि ग्रन्थोंमें विधान किया है उस कर्मके अनुष्ठानको धर्म कहते हैं किन्तु वह कर्म जो अर्थरूप हो अर्थात् अनर्थ अर्थात् हिंसासे रहित हो । यदि ऐसा कोई कर्म जिसमें अनर्थ अर्थात् हिंसा होवे उसको धर्म नहीं कहते हैं । धर्मकी जड़ अहिंसा है अहिंसारूपी वृक्षसे जो फल उत्पन्न होवे उसीको धर्म कहते हैं । इसीलिये पातंजलयोगसूत्रमें यमनियमके वर्णन करनेमें पहला अंग अहिंसा लिखा है और उसके भाष्यमें व्यासमहर्षिनेभी शुद्ध अहिंसाको धर्म लिखा है यह हम पीछे लिख चुके हैं ॥ (वैष्णवोंमेंभी अहिंसा परमधर्म है । जैनोंमेंभी अहिंसा परमधर्म है और बुद्ध ग्रन्थोंमेंभी अहिंसा परम धर्म माना गया है)॥ मन्त्र जपनेसे सिद्धि हो जाती है। मंत्रका अनुष्ठान करनेसे चित्त शुद्ध होकर अणिमा आदि अष्टसिद्धि और आकाशगमनकी प्राप्ति हो जाती है। गायत्री और प्रज्ञापारमिता आदि मंत्र कहाते हैं। तपस् करनेसेभी संकल्प सिद्ध हो जाता है।

यो०॥ ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ३ । ४५ ॥

समाधिसेभी सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥४।१॥ किन्तु इन सब सिद्धियोंमें जो सिद्धि ध्यानसे उत्पन्न होती है उसमें चित्त आशय अर्थात् वासनासे रहित हो जाता है। ध्यान समाधिका नाम है ॥४।६॥ (देखो योगसूत्र) योगीको अणिमा आदि आठ सिद्धियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है और शरीरकी संपत्तिभी प्राप्त हो जाती है और पृथिवी आदि योगीके शरीरकी क्रियाओंको नहीं रोक सकते हैं ॥ योगी अणुके समान बन जाता है इसको अणिमासिद्धि कहते हैं। अत्यन्त लघु बन जाता है इसको लघिमासिद्धि कहते हैं। बहुत बड़ा शरीरको बना लेता है इसको महिमासिद्धि कहते हैं। उंगलीके अग्रभागसेभी चन्द्रमाको छू सकता है इस सिद्धिका नाम प्राप्ति है। इच्छाका बाध न होय इसको प्राकाम्यसिद्धि कहते हैं जैसें भूमिमें ऐसे डुबकी लगा सकता है जैसे जलमें। पंचमहाभूत और महाभूतोंके बने हुए पदार्थ वशमें हो जाते हैं इस सिद्धिका नाम वशित्व है।

भूतभौतिक पदार्थोंको उत्पन्न कर सकता है और नाश कर सकता है इस सिद्धिका नाम ईशित्व है। संकल्पोंके सत्य होनेका नाम कामावसायित्वसिद्ध है, जैसा संकल्प करता है उसी प्रकार सब भूत आदि हो जाते हैं। किन्तु ऐसा समर्थ होकरभी पदार्थोंको अन्यथा नहीं करता है पूर्वसिद्ध पुरुषोंका जो संकल्प हो चुका है उसको नहीं तोड़ता है क्यों कि वहभी सत्यसंकल्प थे यह आठ सिद्धि हुई ॥ ३ ॥ ४५ ॥ योगीका शरीर अत्यन्त दर्शनीय हो जाता है, कान्तिमान् हो जाता है, अत्यन्त बलवान् हो जाता है, और वज्रके समान शरीर हो जाता है। यह सब शरीरकी संपत्ति कहाती है ॥३॥४६॥ अब कुछ सिद्धियोंका वर्णन लिखते हैं जो सिद्धि संयम करनेसे प्राप्त हो जाती हैं ॥ देखो योगसूत्र ॥ किसी देश अर्थात् वस्तुमें चित्तके बन्धका नाम धारणा है किसी वस्तुमें चित्त बांधने अर्थात् एकाग्र करनेके अभ्यासका नाम धारणा

यो०॥ रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ॥ ३ । ४६ ॥

यो०॥ देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ ३ । १ ॥

है। जितने कालतक एकही वस्तुके संकल्प जीमें उठें और जितने कालतक एकही वस्तुका आकार जीमें भासे तो ऐसी दशामें कहेंगे कि उतने कालतक चित्त एक वस्तुमें लगा रहा। अब चित्त सब कालमें एकही वस्तुमें नहीं रहता है किन्तु चित्तमें बराबर परिणाम होता रहता है एक वस्तुके संकल्प उत्पन्न होके मिट जाते हैं और दूसरी वस्तुके उत्पन्न हो जाते हैं बराबर जलकी तरंगके समान अथवा दीपककी शिखाके समान लगातार चित्तमें संकल्प उत्पन्न होते हैं। इन संकल्पोंको अष्टसाहस्रिकामें चित्तोत्पादके नामसे लिखा है इन संकल्पोंकी गति अभ्यासके अधीन है। जिस पुरुषको जिन वस्तुओंका संग बहुत रहता है उसी प्रकारके संकल्प उसके जीमें उठते हैं, जो पुरुष जिस व्यवहार वा व्यापारको करता है उसी व्यवहार

वा व्यापारके संकल्प उस पुरुषके जीमें उत्पन्न होते हैं। जो विद्वान् विद्याका अभ्यास करते हैं उनके चित्तमें विद्या और पुस्तकोंके संबन्धी संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं। और जो क्षत्रियकर्ममें प्रवृत्त हैं उनके जीमें प्रायः उसी प्रकारके क्षत्रसंबन्धी संकल्प होते हैं। जो वाणिज्य व्यापार करते हैं उनके जीमें उसी प्रकारके वाणिज्यके संकल्प विशेषकर होते हैं। जो सेवा करते हैं उनके जीमें सेवासंबन्धी संकल्पोंकी उत्पत्ति होती है। जो म्लेच्छ हिंसा आदि कर्म करते हैं उनके मनमें उस प्रकारके हिंसाआदि संबन्धी संकल्पोंका भाव होता है। जैसा २ जिसका भाव है वह वैसे २ ही संकल्पोंको स्वप्नमेंभी अनुभव करता है। किन्तु थोडेसे संकल्प ऐसे हैं जो सब पुरुषोंमें समान होते हैं जैसे भूख पिलासके संकल्प, सोने जागनेके संकल्प, शीत उष्णके संकल्प और काम क्रोध लोभ मोह और भयके संकल्प। यह संकल्प विद्वान्मेंभी उत्पन्न होते हैं और म्लेच्छमेंभी इसलिये समान हैं। इन सब प्रकारके संकल्पोंको जीमेंसे निकालकर चित्तकी एकाग्रताका अभ्यास होता है। पहले संगसे उत्पन्न हुए २ संकल्प तो सब प्रकारका संग छोड़नेसे दूर हो जाते हैं। फिर काम आदिको हठसे रोककर जो पुरुष अभ्यासमें प्रवृत्त होता है तो कालान्तरमें भूख पिलास आदिके संकल्पभी दूर हो जाते हैं। अब अभ्यासकी दशामें जब पुरुष चित्तको एकही वस्तुमें बांधता है तो वह चित्त वार २ वहांसे छूट जाता है और अन्य २ वस्तुओंके संकल्पोंको करने लगता है तो ऐसी दशामें इस पुरुषको हठी घोड़ेके सवारके समान उपस्थित रहना चाहिये जैसे अश्वशिक्षक (चाबुकसवार) घोड़ेकी हठ निकालता है और घोड़ेको शिक्षित बनाकर वशमें करता है उसी प्रकार इस पुरुषकोभी मनकी हठको निकालना चाहिये। घोड़ा पूर्व दिशामें जाता है और सवार पश्चिम दिशामें जाना चाहता है, दक्षिणसे आते हुए घोड़ा चतुष्पथ (चौराहे) पर अड़ जाता है और सवारको गिराकर पूर्वको चला

जाता है किन्तु सवार फिर वीरताके साथ घोड़ेपर चढ़कर और घुमाकर दक्षिण दिशाकी ओरसे आता है और चतुष्पथपर आकर घोड़ेको पश्चिमकी ओर ले जाना चाहता है किन्तु घोड़ा हठ तो करता है पर थोडी हठ करता है । इसी प्रकार क्रम २ से घोड़ेकी हठ निकल जाती है और सवारके वशमें घोड़ा हो जाता है । इसी प्रकार जो पुरुष क्रम २ से मनको साधता है और व्याकुल नहीं होता है तो उस पुरुषका चित्त धारणाकी दशासे ध्यानकी दशामें पहुंच जाता है + जो वस्तु इष्ट हो उसमेंही चित्तको बांधे और जबही चित्त छूट जावे तो फिर उसको घुमाकर वहीं अपने इष्टपर लगा दे । इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करे तो चित्तका बन्ध किसी इष्ट वस्तुमें होने लगता है । नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्धज्योतिः, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, आदि अंगोंमें बांधनेका अभ्यास करे अथवा मंत्रका अभ्यास करे और शब्दमेंही चित्तको बांधे और अथवा और किसी बाहरकी वस्तुमें मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करे ॥ ३ ॥ १ ॥

यो०॥ तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ ३ ॥ २ ॥

जब चित्त लगातार एक वस्तुमें बहुतकालतक लग जावे और अन्य संकल्पको न उत्पन्न करे तो ऐसी दशाको ध्यान कहते हैं । प्रत्ययका अर्थ ज्ञान है । लगातार तरंगके समान एकही प्रकारकी जो संतति होवे उसको एकतानता कहते हैं । चित्तमें संकल्प तो ध्यानकी दशामेंभी होते हैं किन्तु इस प्रकार होते हैं जैसे जलमें एक ईंट कोई फेंके तो तरंग जलमें उठती है और उस तरंगसे और, फिर और, इसी प्रकार जबतक कोई रोक न आवे जलमें दूरतक तरंग उठती चली जाती हैं । इसी प्रकार जब चित्तमें एक वस्तुका संकल्प किया तो फिर जबतक उस संकल्पके समान दूसरे संकल्प लगातार उत्पन्न होते जावें और दूसरे प्रकारके संकल्प न होवें तबतक कहेंगे कि उस वस्तुका ध्यान

रहा और जबही दूसरी वस्तुका संकल्प आकर पहले संकल्पोंकी संततिको तोड़ दे तो जानना चाहिये कि ध्यान टूट गया। ऐसी दशा जब इष्ट कालपर्यन्त रहवे तो उसको ध्यान कहते हैं, जितने कालतक जी चाहे उतने कालतक रहवे तब ध्यानका निश्चय किया जावेगा ॥ ३ । २ ॥ किन्तु इस ध्यानमें शब्द अर्थ और अर्थका ज्ञान तीनोंका बोध रहता है, और जब यह ध्यान बढ़ते २ ऐसी दशाको पहुंच जावे कि उस ध्यानमें अर्थमात्रका निर्भास होवे और शब्द और अर्थके ज्ञानका बोध न रहवे अर्थात् चित्त अर्थाकार होकर भासे और दूसरी वृत्ति शब्दआदिकी चित्तमें न रहे। चित्तमें यह संकल्प न रहे कि यह वस्तु ध्यानकी जा रही है और यह ध्यान है और मैं ध्यान कर रहा हूं। इस प्रकारकी चित्तकी दशाका नाम समाधि है ॥ यह समाधि संप्रज्ञात समाधिका अंग है और भेद यह है

यो०॥ तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ । ३ ॥ त्रयमेकत्र संयमः ॥ ३ । ४ ॥

यो०॥ तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥ ३ । ५ ॥

कि इस समाधिमें ध्येय वस्तुके स्वरूपका पूरा २ ज्ञान नहीं होता है किन्तु जब इस प्रकारकी समाधिभी होवे और ध्यान की हुई वस्तुका स्वरूप भासे और पूर्ण साक्षात्कार होवे और अन्य वस्तुओंका पूर्ण बोध होवे तो उस दशाको फिर संप्रज्ञातयोग और संप्रज्ञातसमाधि कहते हैं। इसका आगे वर्णन करते हैं ॥ ३ । ३ ॥ धारणा ध्यान और समाधि तीनों अंगोंका एक विषयमेंही जब अभ्यास किया जावे तो उसको संयम कहते हैं। जिस वस्तुमें चित्तको बांधके धारणा की उसीमें फिर ध्यान हो जावे और उसीमें फिर समाधि हो जावे तो चित्तकी ऐसी दशाको संयम कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ जब इस संयममें जय हो जाती है तो प्रज्ञाका आलोक अर्थात् प्रकाश होता है। जितना २ संयम स्थिर होता

जाता है उतनी २ ही समाधिप्रज्ञाका प्रकाश और शुद्धि बढ़ती जाती है ॥ ३ । ५ ॥ अब इस प्रज्ञाआलोककी अनेक भूमि हैं । एक भूमिसे निकलकर दूसरी भूमिमें विनियोग करना चाहिये । इन भूमियोंका ज्ञान उस दशामें पहुंचकर आपही हो जाता है औरसे पूंछनेकी आवश्यकता नहीं होती है क्यों कि योगका उपाध्याय और पाठक योगही है जो पुरुष लगातार योगमें प्रवृत्त होता है उसका योग आपही योगसेही प्रवृत्त होता चला जाता है और योगसेही और आगेके योगका ज्ञान होता चला जाता है इस प्रकार योगी निरन्तर बहुत कालतक योगका अभ्यास करके असंप्रज्ञात योगको पा लेता है और निर्बीज समाधिमें स्थिर हो जाता है ॥ ३ । ६ ॥ पीछे विवेकख्यातिकी उत्पत्तिके साधन योगके

यो०॥ तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ३ । ६ ॥ यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्या-
यो०॥ नसमाधयोऽष्टावंगानि ॥ २ । २९ ॥ त्रयमंतरंगं पूर्वेभ्यः ॥ ३ । ७ ॥ तदपि बहिरंगं
यो०॥ निर्बीजस्य ॥ ३ । ८ ॥ तत्र स्थिरसुखमासनम् ॥ २ । ४६ ॥

आठ अंग कहे हैं, उनके नाम यह हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ॥ २ । २९ ॥ इन आठ अंगोंमेंसे अन्तके तीन अंग अर्थात् धारणा ध्यान और समाधि तो संप्रज्ञातयोगके अन्तरंग साधन हैं और शेष पांच बहिरंग साधन हैं ॥ ३ । ७ ॥ और यह तीन साधन अर्थात् धारणा ध्यान और समाधिभी असंप्रज्ञातयोग अर्थात् निर्बीज समाधिके बहिरंग साधन हैं क्यों कि असंप्रज्ञातयोग इन अंगोंसे निवृत्त चित्त होनेपर सिद्ध होता है । इनकी चर्चा आगे समाधिव्याख्यामें करेंगे ॥ पहले पांच अंगोंमेंसे यम और नियमकी चर्चा तो कर चुके हैं आसन प्राणायाम और प्रत्याहारकी चर्चा करके संयमकी व्याख्या पूरी करके सिद्धियोंकी व्याख्या करेंगे ॥ देखो योगसूत्र ॥ बहुत कालतक

जिस आसनसे बैठनेमें स्थिर सुख मिले, शरीर दुःखी न होवे, पैर न थकें और चित्त व्याकुल न होवे उस आसनको स्थिरसुख आसन कहते हैं। हठप्रदीपिकाग्रन्थमें यद्यपि नानाप्रकारके आसन दिये हैं तोभी योगियोंको प्रायः दो आसन उपयोगी होते हैं एक पद्मासन और दूसरा स्थिरसुख आसन। योगियोंकी मूर्ति देखनेसे इन आसनोंकी प्रतीति ठीक हो जाती है। शिवजीकी मूर्ति प्रायः इन्हीं आसनोंमेंसे किसी न किसी आसनसे बैठी हुई मिलती हैं। जैनपुरुषोंके सिद्धोंकी मूर्तिभी पद्मासनसे बैठी हुई प्रायः मिलती हैं और बुद्धकी मूर्तिभी पद्मासनसे बैठी मिलती हैं। यद्यपि पातंजलसूत्रके भाष्यमें स्वस्तिक और पद्मासन और स्थिरसुख और यथासुख यह आसन अलग २ दिये हैं तोभी इनमें बहुतही थोड़ा अन्तर है। इन दो प्रकारसे बैठना अच्छा है॥ बाएं पैरको दहने पैरकी जांघ और

यो०॥ **प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥२।४७॥ ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ २ । ४८ ॥**

पिंडलीके बीचमें करे और फिर दहने पैरको बाईं पिंडलीके ऊपर धरे। अथवा बायां पैर दहनी जांघके ऊपर होवे और फिर दहना पैर बाईं जांघपर धरे। इस प्रकार इन दो आसनोंमें बहुत कालतक बैठनेमें सुख मिलता है॥ २ । ४६ ॥ आसनकी सिद्धि तब होती है जब शरीरके प्रयत्नोंको शिथिल अर्थात ढीला करे। स्वाभाविक रीतिमें शरीरको छोड़ देवे और प्रयत्न शरीरसे न करे तो इस प्रकार करनेसे अंगोंमें कम्प आदि नहीं होते हैं और शरीर स्थिर हो जाता है। अथवा अनंत देवतामें चित्तकी समापत्ति करनेसेभी आसन स्थिर हो जाता है। समापत्तिका अर्थ तदाकारवृत्ति है। समापत्तिकी विशेष व्याख्या आगे समाधिकी व्याख्यामें लिखेंगे॥ २ । ४७ ॥ आसनके सिद्ध हो जानेसे भूख पिलास शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंकी बाधा दूर हो जाती है। यह द्वन्द्व फिर नहीं सता सकते हैं॥ यह आसनका

अभ्यास बहुत कालतक करनेसे आसन सिद्ध हो जाता है ॥ २ । ४८ ॥ आसनके सिद्ध हो जानेपर श्वास और प्रश्वासकी गतिको रोकनेका नाम प्राणायाम है । बाहरकी वायुको जो पीते हैं उसको श्वास कहते हैं और भीतरकी वायुको जो बाहर उगलते हैं उसको प्रश्वास कहते हैं । यदि कोई पुरुष थोड़ी देरतक बाहरसे पवन न पीये और भीतरकी पवनकोभी भीतर रोके तो बहुत व्याकुल होने लगता है उसको अवश्य भीतरकी पवन बाहर निकालना पड़ती है और बाहरकी पवन पीना पड़ती है । मुख और नाकको बन्द करके यदि किसीकी सांसको रोक दें तो थोड़ी देरमें उस पुरुषका प्राणान्त हो जावेगा इससे सांसका लेना और छोड़ना सब प्राणियोंको आवश्यक है । किन्तु अभ्यास करनेसे यह गति दूर हो जाती है और पुरुष विना सांसके लिये और विना सांसके छोडेभी जी सकता है। जैसे जलमें

यो०॥ तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ २ । ४९ ॥

कोई पुरुष डुबकी लगावे तो थोड़ीसी देरमें वह पुरुष व्याकुल होता है और वह बाहरसे सांसको खैंचता है किन्तु जलके भीतर पवन तो नाक और मुखमें नहीं जा सकती इसलिये जल खिंचकर नाक मुख और कानमें भर जाता है और वह पुरुष मर जाता है किन्तु जो पैरनेवाले और कुओंमें डुबकी लगानेवाले पुरुष अभ्यास करते हैं तो घंटे २ भर और अधिक देरभी जलमें बैठे रहते हैं और उनका सांस नहीं चलता है और आंख नाक कान और मुखमें पानी नहीं भरता है । वह डुबकी लगानेवाला पुरुष जलमें बैठा रहता है और सांस रुक जाती है उसने प्राणायामका अभ्यास नहीं किया है तोभी स्वाभाविक प्राणायाम उसको हो जाता है । इसी प्रकार जो पुरुष पवन भरे हुए आकाशरूपी कूप (कुए) में बैठकर अभ्यास करता है तो उसकोभी प्राण रोकनेकी गति प्राप्त हो जाती है । जितना २ पुरुष अभ्यास बढ़ाता है उतना २ ही अधिक

देरतक प्राण रोकनेकी गति प्राप्त होती जाती है । जैसे कोई मल्लविद्या सीखनेके लिये अखाड़ेमें जावे और पहले दिन दश दण्ड करे तोभी उसका शरीर दुःखता है और सांस चलने लगता है किन्तु क्रम २ से वह अभ्यासको बढ़ावे तो पांच २ सौ दण्ड करने लगता है और दश २ घंटे पिचैती करता है किन्तु उसका सांस साधारण दशामें स्थित रहता है । इसी प्रकार प्राणायामका अभ्यास करनेमेंभी जानना चाहिये । इतना औरभी है कि अभ्यास बढ़ जानेसे कुछ यत्न नहीं करना पड़ता है और स्वभावसे प्राण रुक जाते हैं । प्राणोंका रुकना चित्तकी एकाग्रताके अधीन है जितना २ चित्तके विकल्प निकलते हैं उतना २ प्राण स्थिर होते हैं । यहभी जान लेना चाहिये कि प्राणायाम करना आवश्यकही नहीं है । प्राणायाम करनेसेही समाधि प्राप्त होती है यह नियम नहीं है किन्तु समाधि होनेसे तो अवश्य प्राणायामकी प्राप्ति हो जाती है । इसलिये जो पुरुष

यो० ॥ **स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ २ । ५० ॥**

मंत्रके द्वारा समाधिका साधन करते हैं उनको प्राणायामकी कुछभी आवश्यकता नहीं है जब वह मंत्रका अनुष्ठान पूर्ण करके समाधिको पा लेवेंगे उनको प्राणायामकीभी पूरी २ गति प्राप्त हो जावेगी । जो पुरुष प्राणायामका अभ्यास करे उसको पथ्य भोजनका अवश्य ध्यान रखना चाहिये क्यों कि साधनदशामें कुपथ्य भोजन करनेसे प्राणायामका अभ्यास नहीं बढ़ता है और शरीरमें रोग आदिभी हो जाते हैं । हठयोगमें जो शंखप्रक्षाल आदि अंग दिये हैं वह समाधिके अन्तरंग साधन नहीं है किन्तु बहिरंग साधनकेभी बहिरंग साधन हैं इसलिये उनकी चर्चा यहां नहीं करते हैं ॥ २ । ४९ ॥ प्राणायामके चार भेद हैं इस सूत्रमें तीन भेदोंकी चर्चा और अगले सूत्रमें चौथेकी चर्चा है । एकका नाम बाह्य प्राणायाम है । इसका नाम रेचक प्राणायामभी है । जब पहले भीतरकी पवनको बाहर फेंककर पवनकी गतिको रोक दें तो बाह्य

प्राणायाम उसका नाम होता है। इसीका दूसरा नाम रेचकभी है। और जब पहले बाहरसे पवनको पीकर पवनकी गतिको रोकें तो उसको आभ्यन्तर प्राणायाम कहते हैं। इसीका दूसरा नाम पूरक है। और जब न पवनको बाहर फेंकें और न बाहरसे भीतरको पियें किन्तु एक संग पवनकी गतिको रोक देवें तो इसका नाम स्तम्भवृत्ति है और इसका नाम कुंभकभी है। और इसी प्राणायामको डुबकी लगानेवाले करते हैं यद्यपि डुबकी लगानेवाले यह बात नहीं जानते हैं किन्तु उनको यह प्राणायाम स्वभावसे हो जाता है। और यह प्राणायामभी देश काल संख्याकी अपेक्षासे दीर्घ और सूक्ष्म होता है। प्रायः प्राणायाम करनेवाले पुरुष इन तीनोंकाही अभ्यास करते हैं। वह पहले दहने स्वरसे पवनको निकालकर प्राणको रोकते हैं फिर बाएं स्वरसे पीते हैं फिर दहनेसे निकालते हैं फिर बाएंसे पीते हैं। इसी प्रकार बाएं स्वरसे निकालते और

यो०॥ बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ २ । ५१ ॥

यो०॥ ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ २ । ५२ ॥

दहनेसे पीते हैं और बाएंसे निकालते और बाएं स्वरसे पीते हैं और दहनेसे निकालते और दहनेसे पीते हैं। इस प्रकार नासिकाके दोनों स्वरोंकी पवनको वशमें करते हैं ॥२ । ५०॥ चौथा प्राणायाम वह है जो बाह्य आभ्यन्तर प्राणायामका अभ्यास करके कुम्भक प्राणायाम किया जावे। जब पहले और दूसरे प्राणायामके विना अभ्यासके कुम्भक किया जावे तो उसको स्तम्भवृत्ति कहते हैं और पहले और दूसरे प्राणायामके अभ्यासपूर्वक कुम्भक किया जावे तो उसको चौथा प्राणायाम बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी कहते हैं ॥२।५१॥ प्राणायामका अभ्यास करनेसे प्रकाश अर्थात् चित्त सत्त्वके आवरण अर्थात् रजस् और तमसूरूप मलकी निवृत्ति हो जाती है, चित्त शुद्ध हो जाता है, विषयोंकी निवृति हो जाती है, इसीलिये प्राणायामको परम

तपस् कहते हैं ॥ २ । ५२ ॥ और प्राणायामके अभ्याससे धारणाओंके करनेकी योग्यताभी हो जाती है ॥ २ । ५३ ॥ जब इन्द्रियोंका अपने २ विषयोंसे संबन्ध निवृत्त हो जाता है तो इन्द्रिय चित्तके स्वरूपका अनुकरण करती हैं जैसे निरुद्ध चित्त अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है इसी प्रकार निरुद्ध इन्द्रियभी अपने स्वरूपमें स्थित हो जाती हैं। चित्तके निरुद्ध हो जानेपरभी इन्द्रिय निरुद्ध हो जाती हैं क्यों कि चित्त इन्द्रियोंका प्रेरक है जैसी २ चित्त चेष्टा करता है वैसी २ इन्द्रियां चेष्टा करती हैं। इन्द्रियोंका निरुद्ध होना प्रत्याहार कहाता है ॥२।५४॥ और इन्द्रियोंका प्रत्याहार हो जानेसे इन्द्रियां परम वश्य हो जाती हैं अर्थात् वशमें हो जाती हैं फिर अन्यथा चेष्टा नहीं करती हैं ॥२।५५॥ धर्म लक्षण और अवस्था परिणामोंमें संयम

यो०॥ धारणासु च योग्यता मनसः ॥ २ । ५३ ॥

यो०॥ स्वस्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ २ । ५४ ॥

यो०॥ ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ २ । ५५ ॥

यो०॥ परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ ३ । १६ ॥

करनेसे अतीत और अनागतका ज्ञान योगीको होता है। जो योगी धर्म लक्षण और अवस्था इन तीन परिणामोंका साक्षात्कार करता है तो भूत और भविष्यत्का यथावत् ज्ञान प्राप्त हो जाता है॥३।१६॥इन तीनों परिणामोंको समझनेके लिये इन सूत्रोंका अर्थ भली प्रकार समझना चाहिये ॥ व्युत्थान संस्कारभी चित्तके धर्म हैं और निरोध संस्कारभी चित्तके धर्म हैं। जब व्युत्थान संस्कारोंका अभिभव अर्थात् हानि होती है और निरोध संस्कारोंका प्रादुर्भाव होता है और फिर उस निरोधक्षणसे चित्त अन्वित होवे तब उस परिणामको निरोध परिणाम कहते हैं। चित्तमें बराबर परिणाम होता रहता है। एक संस्कार दब जाता है दूसरा संस्कार

उत्पन्न हो जाता है। जैसे जलमें तरंग बराबर उठती हैं इसी प्रकार चित्तमें संस्कार बराबर उठते रहते हैं। जब निरोधके संस्कार उत्पन्न होवें और व्युत्थानके संस्कार दब जावें तो उस निरोध संस्कार उत्पन्न होनेके क्षणमें चित्तका निरोधपरिणाम कहाता है॥ ३। ९॥ जब निरोध संस्कारोंकी उत्पत्तिका अभ्यास बढ़ने लगता है और व्युत्थान संस्कारोंकी उत्पत्तिका अभ्यास घटने लगता है तो चित्त बहुत कालतक प्रशान्त दशामें बहता है॥ ३। १०॥ जब चित्तके सर्वार्थताके अर्थात् विक्षेपके संस्कारोंका क्षय हो जाता है और एकाग्रताके संस्कारोंका उदय हो जाता है तो इस परिणामको समाधि परिणाम कहते हैं॥ ३। ११॥ जब शान्त हुए २ संस्कार और उत्पन्न हुए २ संस्कार तुल्य ज्ञानवाले होवें अर्थात् निरोध संस्कारोंकी

यो०॥ व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयी निरोधपरिणामः ३।९॥

यो०॥ तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात्॥ ३। १०॥

यो०॥ सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः॥ ३। ११॥

यो०॥ शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः॥ ३। १२॥

संतति लगातार बंध जावे और फिर व्युत्थान संस्कार उस संततिको न तोड सकें तो इस प्रकार लगातार समान संस्कारोंकी उत्पत्तिको चित्तका एकाग्रता परिणाम कहते हैं। जब यह एकाग्रता परिणाम उदय होता है तो विक्षेप संस्कारोंका परिणाम नष्ट हो जाता है तो ऐसी दशाको समाधि परिणाम कहते हैं॥ ३। १२॥ जैसे यह चित्तके परिणाम कहे गये हैं इसी प्रकार महाभूत और इन्द्रियोंमेंभी परिणाम होता रहता है। और उन परिणामोंको धर्म लक्षण अवस्था परिणामोंके नामसे कहते हैं। धर्मी अर्थात् द्रव्यके गुणोंमें जो परिणाम होवे उसे धर्म परिणाम कहते हैं जैसे मृत्पिंडाकार द्रव्य परिणामको प्राप्त होकर घटाकार हो जाता

है । लक्षणोंके परिणामको लक्षण परिणाम कहते हैं और अवस्थाके परिणामको अवस्था परिणाम कहते हैं । यह सब परिणाम वस्तुतः एकही हैं तोभी भेदसे विशेष दिखानेको वर्णन किये गये हैं ॥ ३ ॥ १३ ॥ धर्मी उसको कहते हैं जिसमें धर्म अर्थात् कोई गुण शान्त हो जाते हैं और कोई गुण उदय हो जाते हैं और कोई गुण अव्यपदेश्य होते हैं अर्थात् कहनेमें नहीं आ सकते हैं और जो धर्मी अपने एकही स्वरूपमें स्थित रहता है ॥ ३ । १४ ॥ (देखो अतीत और अनागतविषयको ॥) तीन काल होते हैं । अतीत, वर्तमान, और अनागत । अतीत और अनागत कालभी स्वरूपसे सत्य हैं । क्यों कि जो धर्म (गुण) धर्मी (गुणी)

यो०॥ एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ ३ । १३ ॥
यो०॥ शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ ३ । १४ ॥
यो०॥ अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ ४ । १२ ॥
यो०॥ ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ ४ । १३ ॥ परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ ४ । १४ ॥
यो०॥ वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ ४ । १५ ॥

चित्तमें परिणामको प्राप्त होते रहते हैं, वह पहले अनागत होते हैं फिर वर्तमान हो जाते हैं और फिर अतीत हो जाते हैं ॥ ४ । १२ ॥ वे चित्तआदिके धर्म जो वर्तमान होते हैं सो व्यक्त अर्थात् प्रकट होते हैं । और जो अतीत और अनागत होते हैं वे सूक्ष्म अर्थात् अव्यक्त होते हैं । और वे सब गुणोंका स्वरूपवाले हैं ॥ गुणोंका जो परमरूप है वह दिखाई नहीं देता है और जो दिखाई देता है वह मायाके समान है और अनित्य होनेसे तुच्छ है ॥ ४ । १३ ॥ गुणोंका एक परिणाम श्रोत्र आदि इन्द्रिय होता है और एकही परिणाम शब्द आदि ग्राह्य विषय होता है । इसलिये परिणाम समान होनेसे वस्तु स्वरूपसे वर्तमान है ॥४।१४॥ एकही वस्तुमें

भिन्न २ पुरुषोंके भिन्न २ चित्त होनेसे वस्तु और चित्तका ज्ञान पृथक् २ है। एकही वस्तुमें किसीका राग होता है और किसीका द्वेष होता है और किसीकी मध्यस्थ वृत्ति होती है न राग और न द्वेष। इसलिये वस्तु तो एकहीसी रहती है किन्तु उसके विषयमें चित्तोंके संकल्प आदि परिणामको प्राप्त होते रहते हैं॥४।१५॥ जो एकही चित्तके अधीन वस्तु होती तो चित्तके निरुद्ध हो जानेपर वा व्यग्र हो जानेपर दूसरे चित्तसे ग्रहण न की जा सकती। इस लिये चित्त पृथक् २ हैं और वस्तु उनसे भिन्न है॥४।१६॥ जिस २ वस्तुसे चित्त उपरक्त होता है वह २ वस्तु ज्ञात होती है। और जिस २ वस्तुसे चित्त उपरक्त

यो०॥ न चैकतंत्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ ४ । १६ ॥तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य

यो०॥ वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ ४ । १७ ॥ सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणा-

यो०॥ मित्वात् ॥ ४ । १८ ॥ न तत् स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ ४ । १९ ॥ एकसमये चोभ-

यो०॥ यानवधारणम् ॥४।२०॥ चित्तान्तरदृश्ये बुद्धेरतिप्रसंगः स्मृतिसंकरश्च ॥ ४ । २१ ॥

नहीं होता है वह २ वस्तु अज्ञात रहती है। क्यों कि मनसे वस्तुका संग विना हुए किसी वस्तुका बोध प्रत्यक्षमें नहीं होता है। साधारण बोधमें मनके संगकी अपेक्षा आवश्यक है ॥ ४ । १७ ॥ किन्तु चित्तके स्वामी पुरुषको चित्तकी वृत्तियां सदा ज्ञात रहती हैं, क्यों कि पुरुष अपरिणामी है पुरुषमें परिणाम नहीं होता है, सर्व कालमें पुरुष कूटस्थ एकरस रहता है॥ ४ । १८ ॥ और वह चित्त स्वप्रकाशक नहीं है क्यों कि वह दृश्य है और परार्थ है इसलिये चित्तका स्वामी पुरुष स्वप्रकाशक है ॥ ४ । १९ ॥ एक समयमें दोनों बातोंका निश्चय नहीं होता है कि चित्त स्वयंभी प्रकाशक होवे और दूसरी वस्तुओंकाभी प्रकाशक होवे ॥ ४ । २० ॥ और जो दूसरे चित्तकी कल्पना की जावे तो बुद्धिकी

ग्राहक दूसरी बुद्धिकी कल्पना की जावेगी सो ठीक नहीं है । और स्मृतियोंका संकर अर्थात् मेल हो जावेगा सोभी ठीक नहीं है ॥ ४ । २१ ॥ इसलिये चिति अर्थात् न परिणाम होनेवाला पुरुष अप्रतिसंक्रम है किसीमें संक्रान्त नहीं होता है किन्तु बुद्धिके प्रतिसंक्रान्त होनेपर तदाकारसा हो जाता है और फिर स्वबुद्धिका संवेदन अर्थात् ज्ञान होता है । पुरुष सब वस्तुको जानता है और बुद्धि और चित्तका स्वामी पुरुष है ॥ ४ । २२ ॥ चित्तके परिणामोंको कह चुके हैं । उस चित्तके निरुद्ध हो जानेपर जिस २ वस्तुमें संयम किया जाता है उसी २ के अनुकूल बोध होता है । जब योगी गुणीके गुणरूप परिणामोंमें संयम करता है तो उसको तीनों कालका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है क्यों कि जो

यो० ॥ **चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ ४ । २२ ॥**

यो० ॥ **शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥३।१७॥**

यो० ॥ **संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ ३ । १८ ॥ प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥३।१९॥**

परिणाम हो चुके हैं वह भूत हैं और जो होनेवाले हैं वह भविष्यत् हैं ॥ अब सर्वभूतरुतज्ञान सिद्धिको कहते हैं ॥ गौ यह शब्द है, गौ यह अर्थ है, गौ यह ज्ञान है । इनका आपसमें एक दूसरेमें अध्यास हो जानेसे संकर अर्थात् मेलसा प्रतीत होता है जो पुरुष योगी इनके विभागमें अलग २ संयम करता है उसको सर्व प्राणियोंके शब्दोंका बोध उत्पन्न हो जाता है ॥ ३ । १७ ॥ मनकी वासना और स्मृतिरूप संस्कारोंका साक्षात्कार करनेसे पूर्व जन्मोंका ज्ञान योगीको उत्पन्न हो जाता है । जन्म वासनाओंके अनुकूल होता है इसलिये वासनारूप संस्कारोंमें संयम करनेसे पूर्व जन्मोंका बोध प्राप्त होता है ॥ ३ । १८ ॥ दूसरे पुरुषोंके प्रत्यय अर्थात् ज्ञानमें संयम करनेसे और ज्ञानका साक्षात्कार करनेसे

योगीको परपुरुषोंके चित्तका ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ३ । १९ ॥ किन्तु वह ज्ञान सालम्बन नहीं होता है उस ज्ञानके आलम्बनको नहीं जानता है क्यों कि उस आलम्बनको संयमका विषय नहीं किया । इस लिये केवल ज्ञानमें संयम करनेसे दूसरे पुरुषोंके चित्तका ज्ञान हो जाता है कि चित्त रक्त है वा शान्त है इत्यादि । केवल पराचित्तोंके ज्ञानमें संयम करनेसे यह बात नहीं विदित होती है कि किस वस्तुमें रक्त है इत्यादि ॥ ३ । २० ॥ शरीरके रूपमें संयम करनेसे और उस रूपके ग्रहण किये जानेकी शक्तिको रोक देनेसे नेत्र और प्रकाशका संयोग न रहनेपर अन्तर्धान हो जाता है । अन्तर्धानका अर्थ यह है कि दूसरे पुरुषोंके देखते २ योगी दूसरे पुरुषोंको नहीं दीखता है । अपने आपको साम्हने खड़ा

यो०॥ न च तत्सालम्बनं तस्याविषयिभूतत्वात् ॥ ३ । २० ॥

यो०॥ कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥ ३ । २१ ॥

यो०॥ सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ ३ । २२ ॥

हुआभी ऐसा छिपा लेता है कि कोई उसको नहीं देख सकता है ॥ ३ । २१ ॥ कर्म दो प्रकारका है । सोपक्रम और निरुपक्रम । जैसे गीला वस्त्र फैलाकर सुखानेसे शीघ्र सूखता है अथवा जैसे सूखे हुए वनमें अग्नि दे देनेसे और चारों ओर पवनके चलते हुए शीघ्र अग्नि वनको जला देती है, इसी प्रकारके शीघ्र फलनेवाले कर्मको सोपक्रम कहते हैं । और जैसे गीला वस्त्र लिपटा हुआ देरमें सूखता है अथवा जैसे भूसी आदिके ढेरमें अग्नि लगा देनेसे देरमें अग्नि जाती है, इसी प्रकारके देरमें फलनेवाले कर्मको निरुपक्रम कहते हैं । इन दोनों कर्मोंमें संयम करनेसे योगीको अपरान्त अर्थात् मरणका ज्ञान हो जाता है, अथवा अरिष्टोंसेभी मरणका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, अरिष्टको देखकरभी समीप आनेवाली मृत्युका बोध

हो जाता है। अरिष्ट तीन प्रकारके हैं आध्यात्मिक और आधिभौतिक और आधिदैविक। कानको बन्द करके यदि अपने देहमें शब्द सुनाई न देवे तो अरिष्ट जानना चाहिये, अथवा नेत्रके अवष्टम्भ होनेपर ज्योतिःको न देख सके तोभी अरिष्ट जानना चाहिये। यह आध्यात्मिक अरिष्ट हुआ। यमपुरुषोंका देखना अथवा बीते हुए पितरोंको अकस्मात् देख लेना आधिभौतिक अरिष्ट है। स्वर्गको अकस्मात् देख लेना अथवा सिद्धोंको अकस्मात् देख लेना अथवा सब कुछ विपरीतही देखना आधिदैविक अरिष्ट है॥ ३। २२॥ जिसके बलमें योगी संयम करता है उसीके समान बलवाला हो जाता है। हाथीके बलमें संयम करनेसे हाथीके समान बलवाला हो जाता है गरुडके बलमें संयम करनेसे गरुडके समान बलवाला हो जाता है

यो०॥ बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ ३ । २४ ॥

यो०॥ प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ ३ । २५ ॥

यो०॥ नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ ३ । २९ ॥ कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३ । ३० ॥

वायुके बलमें संयम करनेसे वायुके समान बलवाला हो जाता है ॥ ३ । २४ ॥ ज्योतिष्मती प्रवृत्ति आगे कहेंगे। आलोकको सूक्ष्म वस्तुमें न्यास करनेसे योगीको सूक्ष्म वस्तुका बोध हो जाता है। और व्यवहित वस्तुमें न्यास करनेसे व्यवहित वस्तुका बोध हो जाता है। और विप्रकृष्ट वस्तुमें न्यास करनेसे विप्रकृष्ट वस्तुका बोध हो जाता है। जिसके बीचमें कुछ ओट होवे उसे व्यवहित कहते हैं और दूरकी वस्तुको विप्रकृष्ट कहते हैं ॥ ३ । २५ ॥ योगी नाभिचक्रमें संयम करनेसे शरीरके व्यूहको यथावत् जान लेता है वात पित्त कफ तीन दोषोंको और त्वक् रक्त मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र इन सात धातुओंके समूह आदिको यथावत् जान लेता है ॥ ३।२९॥ जिह्वाके नीचेके भागका नाम तंतु है। और तन्तुसे नीचे कण्ठ है। और

कण्ठसे नीचे कण्ठकूप है। उस कण्ठकूपमें संयम कर लेनेसे भूख पिलासकी निवृत्ति हो जाती है॥ ३।३०॥ कण्ठकूपसे नीचे उरस् (छाती) में कूर्म (कछुआ) के समान नाडी है उसको कूर्मनाडी कहते हैं उसमें संयम करनेसे योगी स्थिर पदको पा लेता है। जैसे सर्प वा गोधा चिपटकर स्थिर हो जाते हैं इसी प्रकार योगी स्थिर हो जाता है॥ ३ । ३१ ॥ शिरके कपालमें भीतरको छेदवाली प्रभास्वर ज्योतिः है उसमें संयम करनेसे योगीको उन सब सिद्धोंका दर्शन हो जाता है जो पृथिवी और अन्तरिक्षमें चलते हैं॥ ॥ ३ । ३२ ॥ अथवा प्रातिभ ज्ञानके उत्पन्न हो जानेसे सब वस्तुको योगी यथावत् जान लेता है। विवेकसे उत्पन्न हुए २ ज्ञानके पूर्वरूप ज्ञानको प्रातिभज्ञान कहते हैं। जैसे सूर्यके उदय होनेपर पहले

यो०॥ कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३ । ३१ ॥ मूर्द्धज्योतिपि सिद्धदर्शनम् ॥ ३ । ३२ ॥

यो०॥ प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३ । ३३ ॥ हृदये चित्तसंवित् ॥ ३ । ३४ ॥

यो०॥ सत्त्वपुरुपयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेपो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३ । ३५ ॥

उसकी प्रभा प्रकाश करती है ऐसेही सर्वज्ञताके उत्पन्न होनेसे पहले प्रातिभज्ञान हो जाता है सर्वज्ञता प्राप्त हो जानेपर विनाही किसी प्रकारका संयम करनेके सर्वज्ञान शुद्धज्ञान उत्पन्न हो जाता है॥३।३३॥ इस ब्रह्मपुरमें दहर पुण्डरीक (कमल) घर है उसको हृदय कहते हैं उसमें संयम करनेसे चित्तोंका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥ ३ । ३४ ॥ बुद्धि सत्त्व और पुरुष दोनों अत्यन्त पृथक् पृथक् हैं। इन दोनोंका जब समानतासे बुद्धिमें ज्ञान होता है तब भोगकी दशा कहाती है क्यों कि बुद्धि परार्थ है अर्थात् पुरुषके निमित्त है। और पुरुप स्वार्थ है स्वाधीन है। उस पुरुषके स्वार्थमें संयम करनेसे पुरुष विषयका

ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥ ३ । ३५ ॥ और फिर उस पुरुष ज्ञानसे प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्ता विषयका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । प्रातिभज्ञानसे सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट, अतीत और अनागत ज्ञान हो जाता है । श्रावणज्ञानसे दिव्य शब्दके श्रवणका ज्ञान हो जाता है । वेदनज्ञानसे दिव्यस्पर्शका ज्ञान हो जाता है । आदर्शज्ञानसे दिव्यरूपका ज्ञान हो जाता है । आस्वादज्ञानसे दिव्यरसका ज्ञान हो जाता है । वार्ताज्ञानसे दिव्यगंधका ज्ञान हो जाता है ॥ ३ । ३६ ॥ समाधिकी दशामें उत्पन्न होकर यह प्रातिभ आदि ज्ञान केवल उपद्रवरूप होते हैं और व्युत्थानकी दशामें इनको सिद्धि कहते हैं । यह इसलिये कहा गया है कि समाधिमें चित्तको लगानेके लिये इनसेभी वैराग्य कर लेना चाहिये ॥

यो०॥ ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥३ । ३६ ॥

यो०॥ ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३। ३७ ॥

यो०॥ बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३। ३८ ॥

यो०॥ उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३ । ३९ ॥

॥ ३ । ३७ ॥ कर्मके बन्धनसे मन शरीरमेंसे निकल नहीं सकता है । समाधिके अभ्याससे वह कर्मका बंधन शिथिल हो जाता है अर्थात् खुल जाता है । और समाधिके अभ्याससेही एक शरीरसे दूसरे शरीरमें चित्तको ले जानेका ज्ञानभी हो जाता है । इस प्रकार योगी कर्मबन्धनके खुल जानेसे और चित्तका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें प्रचार करनेका ज्ञान उत्पन्न हो जानेसे दूसरे शरीरमें आवेश कर सकता है ॥ ३ । ३८ ॥ शरीरमें पांच प्रकारकी वायु गतिके भेदसे कहाती है । मुख नासिकामें चलने-वाली और हृदयतक रहनेवाली वायुका नाम प्राण है । हृदयसे लेकर नाभिपर्यन्त रहनेवाली समतासे

चलनेवाली वायुका नाम समान है। नाभिसे लेकर पैरतक रहनेवाली नीचेको चलनेवाली वायुका नाम अपान है। मुखसे लेकर शिरपर्यन्त रहनेवाली ऊपरको चलनेवाली वायुका नाम उदान है। सब शरीरमें व्यापक वायुका नाम व्यान है। इन वायुओंमेंसे उदान वायु वशमें हो जानेसे जल पंक (कीँच) कंटक आदि वस्तुओंके ऊपर विना स्पर्श किये योगी ऐसे चल सकता है जैसे कोई पक्षी आकाशमें चल सकता है वा मनुष्य पृथिवीपर चल सकता है। और मृत्युकालमें शरीरसे उत्क्रान्ति कर सकता है शरीरको छोडकर ऊपरको उत्क्रान्त हो जाता है॥ ३ । ३९ ॥ और समान वायुके वशमें हो जानेसे योगी अग्निके समान जलनेसा लगता है॥ ३ । ४० ॥ श्रोत्र और शब्दकी प्रतिष्ठा आकाशाधीन है। इस-

यो०॥ समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ३ । ४० ॥ श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥

यो०॥ ॥ ३।४१ ॥ कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥३।४२॥

यो०॥ बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ३ । ४३ ॥

लिये आकाश और श्रोत्रमें सम्बन्ध है। उस संवन्धमें संयम करनेसे दिव्य श्रोत्र हो जाते हैं ॥३।४१॥ शरीर और आकाशकाभी सम्बन्ध है। शरीर और आकाशके संबन्धमें संयम करनेसे सम्बन्धमें जय हो जानेसे और लघु वस्तु तूल आदिमें समापत्ति कर लेनेसे योगीको आकाशकी गति प्राप्त हो जाती है। जलके ऊपर पैरोंसे चल सकता है। मकरीके जालेके तारके सहारेसेभी चल सकता है। तेजकी किरणोंके द्वारा चल सकता है। और आकाशमेंभी चल सकता है॥ ३ । ४२ ॥ शरीरसे बाहर मनके वृत्तिलाभ हो जानेको विदेहाधारणा कहते हैं। जो मन शरीरमेंही स्थित रहवे और वृत्ति बाहर होवे तो वह वृत्ति कल्पिता कहलाती है। और जो मनभी शरीरकी विना अपेक्षाकेही बहिर्वृत्ति होवे तो उस

वृत्तिको अकल्पिता कहते हैं। और उस अकल्पिताका नाम महाविदेहा है। कल्पिता वृत्तिसे अकल्पिता वृत्ति सिद्ध हो जाती है। उस बहिर्वृत्तिसे योगी दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाता है। जब चित्तकी ऐसी वृत्ति सिद्ध हो जावे तो बुद्धिसत्त्वके प्रकाशके आवरण क्लेश कर्म और विपाकका नाश हो जाता है क्यों कि क्लेश कर्म और विपाकका मूल रजस् और तमस् है और प्रकाश शुद्ध हो जानेसे रजस् और तमस् पूरे २ निवृत्त हो जाते हैं ॥ ३ । ४३ ॥ पृथिवी जल तेजस् वायु और आकाश यह पदार्थोंका स्थूल रूप है। और पृथिवीका स्वरूप मूर्ति है। जलका स्वरूप स्नेह है। अग्निका स्वरूप उष्णता है। वायुका स्वरूप प्रणामी है। और आकाशका स्वरूप सर्वतोगति है। यह पांचों महाभूतोंका स्वरूप हुआ। इन पांचों भूतोंका गन्ध रस रूप स्पर्श और शब्द सूक्ष्मरूप है। गुण प्रकाश क्रिया और स्थिति शील-

यो०॥ स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥ ३ । ४४ ॥

यो०॥ ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ३ । ४७ ॥

वाले हैं। यह भूतोंका चौथा रूप अन्वयरूप कहाता है। और भोग और अपवर्गके अर्थ गुणोंकी प्रवृत्ति है। यह भूतोंका पांचवां रूप अर्थवद्रूप कहाता है। इस प्रकार पांच रूपवाले पांच भूतोंमें संयम करनेसे पांचों भूत योगीके वशमें हो जाते हैं। इन भूतोंके वशमें हो जानेसे अणिमा आदि अष्टसिद्धि प्राप्त हो जाती हैं। इन सिद्धियोंको कह चुके हैं ॥ ३ । ४४ ॥ जैसे पंचभूतोंके पांच रूप हैं उसी प्रकार इन्द्रियोंकेभी पांच रूप हैं उनमें संयम करनेसे इन्द्रिय योगीके वशमें हो जाती हैं। इन्द्रियोंका पहला रूप ग्रहणरूप है शब्द आदि ग्राह्य विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होना पहला रूप है। इन्द्रियोंका स्वरूप इन्द्रियोंका दूसरा रूप है। सूक्ष्मरूप इन्द्रियोंका अस्मितारूप अहंकार है। प्रकाश क्रिया स्थिति

शील गुण इन्द्रियोंका चौथा रूप अन्वयरूप है जिन गुणोंसे अहंकारसहित इन्द्रिय बनी हुई हैं। पांचवां रूप पुरुषार्थवत्ता है। गुणोंकी प्रवृत्ति पुरुषके भोग और अपवर्गके लिये है॥ ३ । ४७॥ इसी प्रकार अहंकार और बुद्धि और मनस् रूप अन्तःकरणके रूपोंमें संयम करनेसे योगीको शरीरकी सबसे उत्तम गतिका लाभ हो जाता है। इसको मनोजवित्व कहते हैं। और इन्द्रियोंकी इष्ट देश काल और विषयोंकी अपेक्षासे वृत्तिके लाभको विकरणभाव कहते हैं। सब प्रकृति और विकारोंके वशमें हो जानेको प्रधानजय कहते हैं। ये सब सिद्धि अन्तःकरणमें संयम करनेसे प्राप्त हो जाती हैं॥ ३ । ४८ ॥ जब बुद्धि सत्व रजस् और तमस्के मलसे रहित हो जाता है, और परम वैशारद्यमें और परम वशीकार संज्ञामें वर्तमान होता है, और बुद्धि और

योे०॥ ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ३ । ४८ ॥

यो०॥ सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ३ । ४९ ॥

यो०॥ क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३ । ५२ ॥

पुरुषकी पृथक्ताके अन्यताख्यातिरूप ज्ञानमें स्थित होता है तो योगी सब भावोंका अधिष्ठाता हो जाता है। सब गुण योगीके वशमें होकर उसके आज्ञाकारी हो जाते हैं। और तब योगी सब वस्तुका ज्ञाता हो जाता है। सब वस्तुको यथावत् जानता है। और इस दशामें योगी सर्वज्ञताको पाकर सर्वज्ञ कहाता है॥ ३ । ४९ ॥ जैसे द्रव्य जो सबसे छोटा टुकड़ा होवे तो परमाणु कहाता है ऐसेही कालका सबसे छोटा टुकड़ा क्षण कहाता है। अथवा एक परमाणु जितने कालमें एक देशको छोड़कर दूसरे देशमें चला जावे उतने कालको क्षण कहते हैं। एक २ क्षणमें प्रत्येक परमाणु आकाशमें चलता हुआ परमाणु भर देशसे हट जाता है। देश काल और द्रव्योंकी यह सूक्ष्मता विचारसे जानी जाती है। जब योगी क्षण

और उन क्षणोंके क्रममें संयम करता है तो उसको विवेकज ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥ ३ । ५२ ॥ प्रतिक्षणके अनन्तर क्रम होता है। एक २ क्षणमें क्रमका बोध पृथक् २ होता है। वस्तु क्षण २ में क्रम २ से परिणामको प्राप्त होती है। और जो वस्तु कूटस्थ नित्य है उसमेंभी क्रम २ से उसकी समानतासे स्थिति रहनेका ज्ञान उपजता है। क्रम क्षणका प्रतियोगी है। प्रतिक्षणके अनन्तर क्रम होता है। परिणामके अन्तमें क्रमकी समाप्ति हो जाती है किन्तु अपरिणामी कूटस्थ वस्तुमें क्रमकी समाप्ति नहीं होती है। परिणामके अन्तमें क्रमकीभी समाप्ति हो जाती है ॥ ४ । ३३ ॥ जातिके भेद होनेसे वस्तुका बोध हो जाता है कि यह गौ है और यह घोड़ी है। और लक्षणके भेद हो जानेसेभी समानजाति वस्तुकाभी बोध हो जाता है कि यह काली गौ है और यह गौरी गौ है। देशके भेद होनेसेभी बोध हो जाता है

यो०॥ क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ४ । ३३ ॥

यो०॥ जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ३ । ५३ ॥

कि यह वस्तु पूर्वकी ओर है और वह वस्तु उत्तरकी ओर है, यह वस्तु इससे पूर्वको है और वह वस्तु इससे उत्तरको है, यह वस्तु पहले है और वह वस्तु इससे परे है। किन्तु जाति और लक्षण और देशका भेद न होवे और दो वस्तुओंमें इस कारण भेद प्रतीत न होवे तो वहां ज्ञानकी प्राप्ति विवेकज ज्ञानसे होती है। जैसे दो आमलक एक जातिके एकसे लक्षणवाले और पास पास रक्खे होवें तो उनको फिर उठाकर उनका देश लौट दें अर्थात् दाहिनी ओर रक्खे आमलकको बांई ओर रख दें और बांई ओर रक्खे आमलकको दाहिनी ओर रख दें तो कोई पुरुष उन दोनों आमलकोंको देखकर यह नहीं बता सकता है कि अमुक आमलक इनमेंसे पहले दाहिनी ओर था किन्तु योगी क्षण और क्षणके क्रमोंको जाननेवाला

तत्काल बता देगा कि अमुक आमलक अमुक स्थानपर पहले था। इस प्रकार क्षण और क्षणके क्रमोंमें संयम करनेसे योगीको सब ब्रह्मांडकी तुल्य वस्तुकाभी विवेक हो जाता है ॥ ३ । ५३ ॥ विवेकज ज्ञानमें तारकज्ञान होता है अर्थात् अपनी प्रतिभासे उत्पन्न हुआ २ होता है। स्वानुभवसे हुए ज्ञानको तारकज्ञान कहते हैं। तारकज्ञान हो जानेपर किसी शास्त्रका आश्रय नहीं रहता है। जिन पुरुषोंको तारकज्ञान हो जाता है उनके लिखे ज्ञानको शास्त्र कहते हैं। उनको दूसरा वचन प्रमाणमें कहनेकी आवश्यकता नहीं रहती है। उनका वचन स्वयं प्रमाण होता है इसलिये उनके वचनको आप्तवचन और आगम कहते हैं। जिनको तारकज्ञान नहीं है वह पुरुष उन आप्तवचनोंका प्रमाण अपने कथनमें देते हैं॥ विवेकज ज्ञान

यो०॥ तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३ । ५४ ॥

यो०॥ जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ ४ । २ ॥

यो०॥ निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ४ । ३ ॥

सर्व वस्तुके विषयमें होता है। कोई वस्तु ऐसी नहीं जो विवेकीको विदित न हो। विवेकज ज्ञान सर्वथाविषय होता है अर्थात् अतीत अनागत और प्रत्युत्पन्न तीनों कालोंका सब ज्ञान यथावत् होता है। और विवेकज ज्ञान अक्रम होता है अर्थात् विवेकसे उत्पन्न हुआ २ ज्ञान क्रम २ से नहीं होता है किन्तु एक क्षणमें सब वस्तुका शुद्ध और सत्य बोध होता है। विवेकसे उत्पन्न ज्ञान होनेपर पूर्ण सर्वज्ञता होती है ॥ ॥ ३ । ५४ ॥ एक जातिसे दूसरी जातिमें परिणामप्रकृतिके आपूरसे होता है। धर्मादि निमित्तकारणकी अपेक्षाका नाम आपूर है। प्रकृति अपने २ विकारपर धर्मादि कारणकी अपेक्षासे अनुग्रह करती हैं ॥४।२॥ धर्मादिनिमित्त प्रकृतिके प्रयोजक अर्थात् चलानेवाले नहीं होते हैं किन्तु प्रकृतियोंके वरण अर्थात् रोकको

तोड़ देते हैं और फिर प्रकृति अपने आपही प्रवृत्त हो जाती हैं। जैसे क्षेत्रिक अर्थात् किसान किसी खेतको जलसे सींचनेके लिये बीचकी रोकको हटाय देता है और जल आपही खेतमें भर जाता है। और किसान मिट्टीको खोद देता है और जल आपही पेड़ोंकी जड़ोंके द्वारा पेड़ोंमें पहुंच जाता है। इसी प्रकार धर्म अधर्मरूप आवरणको हटाय देता है और प्रकृतिके अनुग्रहसे परिणाम एक जातिसे उत्तम जातिमें हो जाता है। और इसी प्रकार अधिक अधर्म धर्मको हटाय देता है तो बुरा परिणाम हो जाता है ॥४।३॥ योगी जब अनेक शरीरोंको बना लेता है तो उन शरीरोंमें चित्तोंकोभी रच देता है उन चित्तोंको अहंकारतत्त्वसे निर्माण कर देता है ॥४।४॥ और जब सब चित्तोंकी प्रवृत्तिमें भेद करना चाहता है तो और सब अनेक

यो०॥ निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ । ४ ॥

यो०॥ प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ४ । ५ ॥

ध०॥ श्रद्धेन्द्रियं धर्मालोकमुखमपरप्रणेयतायै संवर्तते ॥ ५७ ॥

चित्तोंका एक चित्तप्रयोजक बना देता है ॥ इस प्रकार योगी अनेक शरीरोंकी रचना कर लेता है ॥४।५॥ यह सब सिद्धि योगके बलसे योगीको प्राप्त हो जाती हैं। और योगके बलसेही शुद्धचित्त होकर योगी मुक्त होकर आवागमनके फंदेसे छूट जाता है, इसलिये योगका अभ्यास श्रद्धासे करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ध० ॥ जैसे इन्द्रिय मनके कारण हैं मन इन्द्रियोंके द्वारा शब्द आदि विषयोंका ग्रहण करता है इसी प्रकार श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि और प्रज्ञाभी इन्द्रिय हैं, ज्ञानकी प्राप्तिके साधन और करण है, इसलिये यहां इनमें इन्द्रियका उपचार किया है। श्रद्धा इन्द्रियरूप धर्मालोकमुख अपर अर्थात् दूसरे पुरुषोंको प्रणेय अर्थात् शिष्यवत् धर्मके श्रवणमें विनीत बनाता है। श्रद्धा जिस पुरुषमें होती है उसको

और उसकी श्रद्धाको देखकर और अन्य पुरुषभी श्रद्धालु हो जाते हैं और धर्मके सुननेमें विनीत होकर धर्मका ग्रहण करते हैं ॥ ५७ ॥ ध० ॥ वीर्य इन्द्रियरूप धर्मालोकमुख सुविचिंतित ज्ञानताको उत्पन्न करता है । अतिशक्ति उद्योग और पुरुषार्थका नाम वीर्य है । जितना अधिक वीर्य पुरुषमें होता है उतनाही अधिक उस पुरुषका ज्ञान सुविचिंतित अर्थात् बहुत भावित और विचारित हो जाता है । जितना अधिक पुरुषार्थ किया जाता है उतनाही अधिक ज्ञान भावित होकर भावनाको पूरा करता है ॥ भावनाकी व्याख्या ॥ चिन्ता परीक्षा विचार और भावनाका अर्थ एकसाही है । पुरुष जैसा २ मनमें ईश्वरका विचार करता है और जैसे २ अपने बन्ध और मोक्षकी चिन्ता करता है वैसेही वैसे ब्रह्मकी भावनाको बढ़ाता हुआ सर्वज्ञताके निकट पहुंचता है क्योंकि ज्यों २ ब्रह्मकी भावना बढ़ती है त्यों २ मनमेंसे लौकिक वासना निकलती हैं

ध०॥ वीर्येन्द्रियं धर्मालोकमुखं सुविचिन्तितज्ञानतायै संवर्तते ॥ ५८ ॥

और ज्यों २ लौकिक वासना निकलती हैं त्यों २ सर्वज्ञता निकट होती है यहांतक कि जब सब सारी लौकिक वासना निकल जाती हैं तब चित्तमेंसे राग द्वेष पूरा २ निकल जाता है और सर्वज्ञता पूरी हो जाती है । यह भावना समाधिके द्वारा तो शीघ्र पक जाती है किन्तु जिसको समाधि प्राप्त न होवे उसको तपस्को अनुष्ठान करते हुए मंत्रके पुनः २ अभ्याससे पकाना चाहिये । मंत्रको जितना २ अधिक पढ़ा जाय और उसके अर्थको विचारा जाय उतना २ ही भावना शुद्ध होती है और चित्तमेंसे असत् और अधर्मकी वासना निकलती हैं । दृष्टान्तपर ध्यान देनेसे भावनाका अर्थ ठीक समझमें आता है । जैसे तिलोंको पुष्पोंके संग किसी पात्रमें रख देते हैं और बन्द कर देते हैं तो उन पुष्पोंकी गन्ध तिलोंमें बस जाती है इसी प्रकार जो पुरुष सर्वथा मंत्रके अर्थको मनमें लगातार बसाता है और अन्य विषयोंकी पवन आनेसे मनरूपी

पात्रको बन्द कर लेता है उसके मनमें मंत्रके शुभ अर्थ वस जाते हैं। और जैसे माली कठा आमके छोटेसे वृक्षको बम्बई आमके वृक्षके नीचे गाड़कर उसकी शाखाको बम्बई आमकी शाखासे जोड़कर बांध देता है तो एक वर्षमें वह कठा आम बम्बई आम हो जाता है इसी प्रकार जो पुरुष मंत्ररूपी वृक्षकी छायामें अपने मनको बिठाकर लगातार रात्रिदिवस मंत्रसे अपने मनको जोड़ देता है और जबतक मंत्रके अर्थका भाव मनमें न वस जावे तबतक उसको वहांसे नहीं हटाता है तो उसका मन अत्यन्त सुशिक्षित होकर उस मंत्रके अर्थके समान होकर शुद्धभी हो जाता है और सिद्धिभी पाकर मंत्रकोभी अपना आज्ञाकारी और हितैपी मित्र बना लेता है । इस प्रकारके मंत्रोंमें प्रज्ञापारमिता मंत्र सबसे उत्तम देखनेमें आता है । हम इसको भाषाटीकाके

ध०॥ स्मृतीन्द्रियं धर्मालोकमुखं सुकृतकर्मतायै संवर्तते ॥ ५९ ॥

ध०॥ समाधीन्द्रियं धर्मालोकमुखं चित्तविमुक्त्यै संवर्तते ॥ ६० ॥

ध०॥ प्रज्ञेन्द्रियं धर्मालोकमुखं प्रत्यवेक्षणज्ञानतायै संवर्तते ॥ ६१ ॥

साथ अलग छाप चुके हैं । इस प्रकारके योगको भावना योग कहते हैं और इसको पूरा करनेके लिये वीर्यका उपस्थित होना उत्तम साधन है ॥५८॥ध०॥ स्मृति इन्द्रियरूप धर्मालोकमुख सुकृतकर्मताको उत्पन्न करता है । जिस पुरुषको स्मृति उपस्थित रहती है उसका चित्त सुकृत कर्मोंके करनेमें लगता है और सुकृत कर्मोंके करनेके कालमें वह नहीं भूलता है पापकी स्मृति रहनेसे पापसे बच जाता है और पुण्यकी स्मृति रहनेसे पुण्य-रूप कर्मोंमें प्रवृत्त होता है ॥५९॥ध०॥ समाधि इन्द्रियरूप धर्मालोकमुख चित्त विमुक्तिको उत्पन्न करता है । जो पुरुष समाधिका अभ्यास करता है उसको चित्तकी विमुक्ति प्राप्त हो जाती है । चित्तकी विमुक्ति तीन प्रकारकी है यह पीछे लिख चुके हैं । समाधिका लक्षणभी पीछे लिख चुके हैं ॥६०॥ध०॥ प्रज्ञा

इन्द्रियरूप धर्मालोकमुख प्रत्यवेक्षणज्ञानताको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषको प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है उसको सब पदार्थोंके प्रत्यवेक्षण अर्थात् यथावत् देखनेका ज्ञान हो जाता है। प्रज्ञाका लक्षण पीछे कह चुके हैं। और अनित्य प्रत्यवेक्षा आदि चार प्रत्यवेक्षणभी कह चुके हैं ॥६१॥ध०॥ जब श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि और प्रज्ञा पूर्ण रीतिसे उत्पन्न हो जाती हैं तो इनको बलके नामसे कहा जाता है। श्रद्धाका बल मारके बलके समतिक्रमको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषमें श्रद्धाका बल पूर्ण हो जाता है तो वह पुरुष मारके बलको उल्लंघ जाता है और फिर मारका बल कुछ नहीं चलता है। मारको एक दुष्ट देवता वर्णन किया है जो योगियोंके योगमें सर्वदा विघ्न डाला करता है। अष्टसाहस्रिकामें बहुत विस्तारसे अनेक अध्यायोंमें

ध०॥ **श्रद्धाबलं धर्मालोकमुखं मारबलसमतिक्रमाय संवर्तते ॥ ६२ ॥**

यो०॥ **व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ १ । ३० ॥**

मारके विघ्नोंका वर्णन करके उपदेश किया है कि बोधिसत्व योगीको चाहिये कि सर्वथा इनकी स्मृति रक्खे और इनको जानकर इनसे बचे। इन मारके विघ्नोंका नाम मारकर्म है। इन सबका वर्णन करनेमें यहां बहुत काल लगेगा इसलिये हम यहां पहले पातंजलयोगमें कहे हुए विघ्नोंको कहकर फिर संक्षेपसे मारकर्मोंकोभी कहेंगे ॥ देखो योगसूत्र ॥ **विघ्न और मारकर्मकी व्याख्या ॥** यह नौ विघ्न चित्तको विक्षिप्त कर देते हैं। यह विघ्न चित्तकी वृत्तियोंके होनेपर उत्पन्न होते हैं और जब चित्तकी वृत्ति नष्ट हो जाती हैं तो यह नहीं उत्पन्न हो सकते हैं। शरीरमें वात पित्त कफके दोषोंके विषम हो जानेसे जो ज्वर आदि रोग उत्पन्न होवें उनको व्याधि कहते हैं। चित्तका कर्ममें न लगने और आलसी होनेका नाम स्त्यान है। ऐसा होय वा न

होय, इस प्रकार संदेहका नाम संशय है। समाधिके साधनोंकी भावना न करना प्रमाद कहाता है। शरीरका भारी होना और कर्ममें प्रवृत्ति न होना आलस्य कहाता है। चित्तका विषयोंमें लगना और उनमें सुख जानना अविरति कहाती है। मिथ्या ज्ञानको भ्रान्तिदर्शन कहते हैं। जो वस्तु न होवे और दिखाई दे उसेभी भ्रान्तिदर्शन कहते हैं। समाधिकी भूमिकी प्राप्ति न होनेका नाम अलब्धभूमिकत्व है। योगकी भूमि यदि मिलभी जावे और उसमें यदि चित्त न जमें तो इसको अनवस्थितत्व कहते हैं। यह नौ अन्तराय चित्तके विक्षेपको उत्पन्न करते हैं ॥ १ । ३० ॥ दुःखका अर्थ पीछे लिख चुके हैं। इच्छाके पूरा न होनेसे जो चित्तमें क्षोभ उत्पन्न होवे उसको दौर्मनस्य कहते हैं। जिसके कारणसे शरीरके अंग कांपने लगे उसको

यो०॥ दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ १ । ३१ ॥

यो०॥ तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ १ । ३२ ॥ तस्य वाचकः प्रणवः ॥ १ । २७ ॥

यो०॥ तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ १ । २८ ॥

अंगमेजयत्व कहते हैं। बाहरकी वायुको जो मुखद्वारा भीतरको पीते हैं उसको श्वास अर्थात् सांस कहते हैं। भीतरकी पवनको जो बाहरको उगलते हैं उसको प्रश्वास कहते हैं। यह सब दोषभी विक्षिप्त चित्तमें होते हैं एकाग्र चित्तमें नहीं होते हैं। और यह विक्षेप समाधिके विरोधी हैं इसलिये अभ्यास और वैराग्यसे इनका निरोध करना चाहिये ॥ १ । ३१ ॥ इन विक्षेपोंकी निवृत्तिके लिये एक तत्त्वकी भावनाका अभ्यास करना चाहिये। चित्तको निरन्तर एक तत्त्वके अभ्यासमें लगानेसे इन विक्षेपोंकी निवृत्ति हो जाती है ॥ ॥ १ । ३२ ॥ और ईश्वरकी भावना करनेसेभी यह विघ्न दूर हो जाते हैं इसलिये कहते हैं कि उस ईश्वरका वाचक जो ओंकार प्रणव है ॥ १ । २७ ॥ उसका जप करना चाहिये। उसके अर्थकी भावना

करनेको जप कहते हैं। बार २ मुखमें ओम्‌को उच्चारण करना चाहिये और उसके अर्थपर ध्यान रखना चाहिये ॥ १ । २८ ॥ इस प्रकार जप करनेसे व्याधि आदि अन्तरायोंका अभाव अर्थात् नाश हो जाता है और प्रत्यक् चेतनका अधिगम अर्थात् शुद्ध आत्माके स्वरूपका बोधभी हो जाता है। जिस प्रकार ईश्वर शुद्ध प्रसन्न केवल बुद्ध मुक्त है उसी प्रकार यह पुरुषभी शुद्धबुद्ध मुक्त है॥ जपका नाम स्वाध्याय है। ओम्‌का तबतक स्वाध्याय करे जबतक चित्त एकाग्र हो जावे और उसी एकाग्रतामें उस जपके अर्थका मनन करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योगकी संपत्ति पूरी हो जानेसे परमात्माका प्रकाश हो जाता है ॥ १ । २९ ॥ अब अष्टसाहस्रिकाकी ओर ध्यान दीजिये। अष्टसाहस्रिकामें तो बहुत विस्तारसे उन सब कर्मोंका वर्णन है जो भावना और समाधिके विरोधी हैं। उनमेंसे थोड़ेसे विकल्पोंको इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं।

यो०॥ ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ १ । २९ ॥

अष्टसाहस्रिकाका एकादश अध्याय (परिवर्त)। जितने मनके विकल्प हैं सबको मारकर्म जानना चाहिये। सब सांसारिक संकल्प भावनाके विरोधी हैं। जैसे ग्राम, नगर, जनपद, राजधानी, उद्यान आदिके विषयके संकल्प इन संकल्पोंको मनसिकार कहते हैं। गुरु, आख्यान, चौर, गुल्म, विशिखा, सुख, दुःख, भय, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, प्रिय, अप्रिय, माता, पिता, भ्राता, भगिनी, मित्र, बान्धव, प्रजा, पति, पुत्र, दुहिता, गृह, भोजन, पान, वस्त्र, शयन, आसन, जीवित, राग, द्वेष, मोह, ऋतु, सुकाल, दुष्काल, गीत, वाद्य, नृत्य, काव्य, नाटक, इतिहास, व्यवहार, हास्य, शोक, आयास इत्यादिके संबन्धी संकल्प जीमें उठें तो जानना चाहिये कि यह सब मारकर्म है इसलिये अभ्यास करनेवाले यतीको चाहिये कि इन सब मनकी इच्छाओंको मिथ्या जानकर इनसे मनको हटावे और इनके वशमें न जावे और अपनी भावनाके अभ्यासको बराबर बढावे॥

ज्यों २ पुरुष सर्वज्ञताकी प्राप्तिका साधन करता है और सर्वज्ञताके निकट पहुंचता है त्यों २ मार अत्यन्त व्याकुल होता है और चाहता है कि बोधिसत्व सर्वज्ञताको न पावे क्यों कि सर्वज्ञताको पाकर पुरुष असंख्यात पुरुषोंको संसारके बन्धनसे निकाल देता है और मार चाहता है कि कोई पुरुष संसारके बन्धनसे न निकले उसका यह दुष्ट भाव स्वाभाविक है। मारका उद्यम इस बातमें बहुत होता है कि योगी श्रावक हो जावे क्यों कि वह जानता है कि श्रावक अनेक जीवोंको संसारके बन्धनसे न निकाल सकेगा आपही मुक्त हो जावेगा इसलिये बुद्ध भगवान्‌ने अनेक अध्यायोंमें बहुत विस्तारसे उन मारकर्मोंको वर्णन किया है कि उनको जानकर बोधिसत्व उनसे बच सकें यहां संक्षेपसे मारकी सेनाको हम गिनाते हैं जो ललितविस्तरमें लिखी हैं। जब योगी प्रज्ञामें स्थित होने लगता है तो अनेक रूपोंसे मार आकर बोधिसत्व योगीको बहकाता है और उसको छलता है। किन्तु बोधिसत्व योगी उसके बहकानेमें नहीं आता है और मार उसका बालभी बांका नहीं कर सकता है केवल उसकी श्रद्धा उसकी ऐसे रक्षा करती है जैसे माता पुत्रकी ॥ ललितविस्तरका अष्टादश अध्याय देखो ॥ बोधिसत्वदशामें जब बुद्ध भगवान् तप करते थे तो मारने आकर कहा है कि हे गौतम! यह मनका निग्रह बहुत कठिन है तुम अपने राज्यको भोगो और पुण्य करो क्यों वृथा कायाको सुखाते और क्लेश उठाते हो। उस समय बोधिसत्वने उत्तर दिया है कि, हे मार! तू पापियोंका बन्धु है मुझको राज्य और पुण्यकी इच्छा नहीं है जिनको राज्य और पुण्यकी इच्छा हो उनसे ऐसा कह मैं ब्रह्मचर्यको कदापि न तोडूंगा, मुझमें श्रद्धा वीर्य और प्रज्ञा उपस्थित है, मैं किसीकोभी ऐसा नहीं देखता हूं जो मुझको इस उत्साहसे चलायमान कर दे वायु और सूर्यकी किरण नदियोंकोभी सुखा देती हैं भला इस शरीरको सुखा दें तो कौन चिन्ता है। रक्तके सूखनेसे मांस सूखता है और मांसके घटनेपर चित्त शुद्ध और प्रसन्न

होता है और अधिक श्रद्धा और वीर्य और समाधि उपस्थित होती हैं ॥ मनकी कामना तेरी पहली सेना है। जिस पुरुषके जीमें विषयभोगोंकी लालसा लगी है उसका मारकर्म विघ्नकारी होता है। रति अर्थात् स्त्रियोंसे मैथुन करनेकी इच्छा दूसरी सेना है। भूख और पिलास तीसरी सेना है। रागद्वेषरूपी तृष्णा तेरी चौथी सेना है। और जीमें स्थानकी चाहनाका होना पांचवीं सेना है। चित्तमें भयका होना छठी सेना है। विचिकित्सा अर्थात् संदेह सातवीं सेना है। क्रोध और लोभ आठवीं सेना है। लाभ और कीर्तिकी इच्छा और संस्कार और संसारके मिथ्यालब्ध यशकी चाहनाभी तेरी सेना है। जो पुरुष अपने आपको बड़ा

मू० ॥ कामास्ते प्रथमा सेना द्वितीया ते रतिस्तथा।तृतीया क्षुत्पिपासा ते तृष्णा सेना चतुर्थिका ॥ १ ॥ पञ्चमी स्थानमिच्छन्ति भयं षष्ठी निरुच्यते। सप्तमी विचिकित्सा ते क्रोधम्रक्षौ तथाष्टमी ॥२॥ लाभश्लोकौ च संस्कारो मिथ्यालब्धं च यद् यशः । आत्मानं यश्चाप्युत्कर्षेद् यश्च वै ध्वंसयेत्परान् ॥३॥ एषा हि नमुचेः सेना पापबन्धोः प्रतापिनः। अत्रावगाढा दृश्यन्त एते श्रमणब्राह्मणाः ॥४॥ या सेना प्रधर्षयति लोकमेनं सदेवकम्। भेत्स्यामि प्रज्ञया तां त आमपात्रमिवाम्बुना ॥ ५ ॥

जाने और दूसरोंको छोटा जाने और दूसरोंका अनादर करे यहभी तेरी सेना है। यह सब सेना पापियोंके बन्धु मारकी सेना है इस सेनाके बन्धनमें सकाम कर्म करनेवाले सब पुरुष फंसे हुए हैं और इस मारकी सेनाके फंदेमें देवताभी पड़े हुए हैं सो मैं इस तेरी सेनाको प्रज्ञाके बलसे ऐसे तोडूंगा जैसे कोई पुरुष मिट्टीके कच्चे घड़ेको पानीमें पटकके तोड़ दे, वह कच्चा घड़ा पानीमें झट गल जाता है। इसलिये पुरुषको स्मरण रखना चाहिये कि इन संकल्पोंको जीमें न आने देवे और लगातार योगका अभ्यास श्रद्धा ब्रह्मचर्या

और तपसपूर्वक बढ़ाता जावे ॥६२॥ध०॥ वीर्यका बल अवैवर्तिकताको उत्पन्न करता है। जिस पुरुषमें वीर्य और उत्साहका बल बढ़ जाता है उसका फिर सर्वज्ञतासे विवर्तन नहीं हो सकता है अवश्य वह सर्वज्ञताको पाता है ॥६३॥ध०॥ जिस पुरुषमें स्मृतिका बल उत्पन्न हो जाता है उसका कोई संहार नहीं कर सकता है। जिसका संहार न हो सके उसका नाम असंहार्य है और असंहार्य होनेका नाम असंहार्यता है ॥ संहारका अर्थ नाश और समेटनेका है। जिस पुरुषकी स्मृति पूरी उपस्थित हो जाती है उसके किसी कर्मका नाश नहीं हो सकता है ॥ देखो चरकके शारीरक स्थानके प्रथम अध्यायको ॥ मुक्त पुरुषोंने मोक्षका

ध०॥ वीर्यबलं धर्मालोकसुखमवैवर्तिकतायै संवर्तते ॥ ६३ ॥

ध०॥ स्मृतिबलं धर्मालोकसुखमसंहार्यतायै संवर्तते ॥ ६४ ॥

च०॥ एतत्तदेकमयनं मुक्तैर्मोक्षस्य दर्शितम्। तत्त्वस्मृतिबलं येन गता न पुनरागताः ॥
वक्ष्यन्ते कारणान्यष्टौ स्मृतिर्यैरुपजायते। निमित्तरूपग्रहणात् सादृश्यात् सविपर्ययात् ॥
सत्त्वानुबन्धादभ्यासाज्ज्ञानरूपात् पुनःश्रुतात्। दृष्टश्रुतानुभूतानां स्मरणात् स्मृतिरुच्यते॥

एकही मार्ग दिखाया है। वह एक मार्ग तत्वकी स्मृतिका बल है जिस बलके द्वारा पुरुष जाकर फिर लौटकर नहीं आते हैं सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं ॥ स्मृतिके उत्पन्न होनेके आठ कारण हैं निमित्त अर्थात् कारणके रूपका ग्रहण होनेसे स्मृति उत्पन्न हो जाती है, कारणको देखकर उसके कार्योंकी स्मृति हो आती है। समान वस्तुको देखनेसे उसके समान वस्तुकी स्मृति हो आती है। विपरीत वस्तुको देखनेसेभी वस्तुकी स्मृति हो आती है। शुद्धमनका अनुबन्ध होनेसेभी स्मृति हो जाती है, जिस वस्तुमें शुद्धमनकी धारणा स्थित हो जाती है उसकीभी स्मृति रहती है। बार २ किसी वस्तुका अभ्यास करनेसे उसकी स्मृति

हो आती है। शुद्ध ज्ञानके होनेसेभी स्मृति हो जाती है। पूर्वमें सुनी हुई वस्तुको फिर दुबारा सुननेसे स्मृति हो जाती है। देखी हुई सुनी हुई और अनुभव की हुई वस्तुओंका स्मरण करनेसेभी स्मृति हो आती है। यह स्मरण रखना चाहिये कि पहले चित्तकी वृत्तियोंमें स्मृतिकोभी गिना है। किन्तु वह क्लिष्टवृत्ति निरोध करनेके योग्य है और यहां शुद्धधर्मपूर्वक स्मृतिकी चर्चा है जो अक्लिष्टवृत्ति है ॥६४॥ध०॥ समाधिका बल सब प्रकारके चित्तके वितर्कोंके प्रहाणको उत्पन्न करता है। समाधिका बल बढ़नेसे मनके सब संकल्प विकल्प शान्त होकर चित्त एकाग्र हो जाता है। समाधिका लक्षण तो संयमके लक्षणमें लिख चुके हैं अब विशिष्ट समाधियोंका लक्षण यहांपर लिखेंगे॥ चित्तकी एकाग्रता समाधिका द्वार है। पीछे एकाग्रतापरिणामको कह

ध० समाधिबलं धर्मालोकमुखं सर्ववितर्कप्रहाणाय संवर्तते ॥ ६५ ॥

यो०॥ तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ १ । ३२ ॥

यो०॥ परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ १ । ३९ ॥

चुके हैं। अष्टांग योगके साधनकाभी लक्षण कह चुके हैं। अब ध्यानके कुछ और साधन कहकर चित्तकी एकाग्रता और समापत्तिको दिखाकर सबीज और निर्बीज समाधियोंको कहेंगे ॥ देखो योगसूत्र ॥ चित्तके विक्षेपको दूर करनेके लिये एकतत्त्वका अभ्यास करना चाहिये। किसी एकही वस्तुमें चित्तको लगानेसे बहुत कालमें चित्त स्थिर हो जाता है। उसी वस्तुके संकल्पोंको उत्पन्न करता है औरमें नहीं जाता है ॥१।३२॥ जब बहुत कालतक चित्त एक वस्तुमें लग जावे तब फिर दूसरी वस्तुमें चित्तको जमावे और फिर इसी प्रकार चित्तको अन्य २ वस्तुमें लगावे जब चित्त ऐसा वशीभूत हो जावे कि जिस वस्तुमें लगावे उसीमें लग जावे और अन्यत्र न जावे तब उसको स्थिर जानना चाहिये। जब चित्त परम अणु वस्तुमें जम जावे और परम

महत् वस्तुमेंभी जम जावे तो उस दशाको चित्तका वशीकार कहते हैं। जब छोटीसे छोटी वस्तुमें लगानेसे चित्त न घबराये पूर्णतासे स्थिर रहे और बडीसे बडी वस्तुमेंभी लगानेसे चित्त न घबरावे पूर्णतासे स्थिर रहे तो जानना चाहिये कि चित्तका अब वशीकार हो गया है, चित्त अब पूर्ण वशमें है। चित्तकी परीक्षाके लिये अनेक वस्तुओंमें चित्तको लगाके देखे और जब कहीं चित्त हठ न करे और किसीमेंभी राग द्वेष न करे, लगानेसे तुरन्त लग जावे और हटानेसे तुरन्त हट जावे तो चित्तको स्थिर कहते हैं। परमाणु सबमें अत्यन्त छोटी वस्तुका नाम है और सबमें अत्यन्त बडी वस्तुका नाम परम महत्त्व है ॥ १ । ३९ ॥ प्रारम्भमें अभ्यास करनेवाले पुरुषको अनेक उपायोंमेंसे किसी उपायको अपने अनुकूल जानकर प्रवृत्ति करना

यो०॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥

यो०॥ ॥१।३३॥ प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ १ । ३४ ॥

यो०॥ विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी ॥ १ । ३५ ॥

चाहिये और चित्तकी स्थिरताके लिये परम उद्योग करना चाहिये ॥ सुखी पुरुषोंमें मैत्रीकी भावना करनेसे, दुःखी पुरुषोंपर दया करनेसे, पुण्यात्मा पुरुषोंको देखकर हर्ष करनेसे, और पापात्मा पुरुषोंमें उपेक्षा करनेसे भावना चित्तकी शुद्ध हो जाती है और उस शुद्ध भावनासे चित्त राग द्वेषसे रहित होकर प्रसन्न अर्थात् शुद्ध हो जाता है और शुद्ध होनेसे चित्त शीघ्र एकाग्र हो जाता है ॥ १ । ३३ ॥ प्रयत्नसे नासिकाके स्वरोंमेंसे पवनको बाहर फेंकने और भीतर खेंचनेसेभी चित्त एकाग्र होता है। यह पीछे प्राणायामके विषयमें लिख चुके हैं ॥ १ । ३४ ॥ विषयवाली प्रवृत्तिभी उत्पन्न होकर मनकी स्थितिको उत्पन्न करती हैं, संशयको तोड देती हैं और समाधिप्रज्ञाको उत्पन्न करनेमें सहायक होती हैं। विषयवती प्रवृत्ति यह कहाती हैं। नासि-

काग्रमें धारणा करनेसे दिव्य गन्धका ज्ञान होने लगता है उसको गन्धप्रवृत्ति कहते हैं। जिह्वाके अग्र भागमें धारणा करनेसे दिव्य रसका ज्ञान होने लगता है उसको रसप्रवृत्ति कहते हैं। तालुमें धारणा करनेसे दिव्यरूपका ज्ञान होने लगता है उसको रूपप्रवृत्ति कहते हैं। जिह्वाके मध्यमें धारणा करनेसे दिव्य स्पर्शका ज्ञान होने लगता है उसको स्पर्शप्रवृत्ति कहते हैं। और जिह्वाकी मूलमें धारणा करनेसे दिव्य शब्दका ज्ञान होने लगता है उसको शब्दप्रवृत्ति कहते हैं। अभ्यास करनेसे जब यह विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती हैं तोभी श्रद्धाका वेग बढ जाता है इन प्रवृत्तियोंकाही नाम संवित् है। और इनकोही प्रतिसंवित्‌भी कहते हैं ॥ यद्यपि योगशास्त्रका सारा विषय अत्यन्त सत्य है तोभी जबतक योगका कुछ विषय अपने अनुभवमें नहीं आता है तबतक योगके अभ्यासमें दृढ बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है इसलिये पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारकी

यो०॥ विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ १ । ३६ ॥

यो०॥ स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ १ । ३७ ॥

प्रवृत्तियोंका अथवा स्वाध्यायका कुछ थोडासा अनुभव करे और फिर श्रद्धाको दृढ करके योगमें प्रवृत्ति करे ॥ १ । ३५ ॥ हृदयकमलमें धारणा करनेसे जो बुद्धि संवित् उत्पन्न होती है उसको ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहते हैं। बुद्धिसत्त्वस्वभावसे प्रभास्वर हैं उसके शुद्ध प्रकाशके द्वाराभी चित्त एकाग्र हो जाता है। और अस्मितामें चित्तको एकाग्र करनेसे तरंगरहित समुद्रके समान शान्त और अनन्त और अस्मितामात्र हो जाता है और ऐसा ज्ञान होता है कि मैं उस अपने स्वरूपको जानकर स्थित हूं। यह प्रवृत्तिभी ज्योतिष्मती कहाती है। और यह प्रवृत्ति शोकको दूर करनेवाली और चित्तको एकाग्र करनेवाली है ॥ १ । ३६ ॥ जो पुरुष स्वप्नके ज्ञानका आलंबन करता है तो शनैः २ स्वप्नकी दशा होकर चित्त एकाग्र हो जाता है। और इसी

प्रकार निद्राके ज्ञानका आलम्बन करनेसेभी चित्त एकाग्र हो जाता है ॥१।३७॥ और यहांतक कि जो वस्तु अपनेको अभिमत होवे उसीकाभी ध्यान करनेमें चित्त एकाग्र हो जाता है ॥१।३८॥ यह सब विषय इस-लिये यहांपर कहे गये कि इनमेंसे किसीकाभी यदि पुरुष अनुभव करेगा तो अवश्य उसको श्रद्धा उत्पन्न होगी और समाधिके अभ्यास करनेके लिये दृढ मति उत्पन्न करेगा ॥ जैसे शुद्ध स्फटिक (बिल्लोर)का पात्र अथवा शुद्ध मणि अपनेमें तो कुछ रंग नहीं रखता किन्तु जिस २ रंगका उसको संग होता है उसी २ रंगका भासने लगता है। जिस २ रंगकी वस्तुके ऊपर शुद्ध मणिको रख दो उसी २ रंगका वह मणि दीखता है और जब वहांसे हटा लो तो शुद्ध अपने स्वरूपमें स्थित है कोई रंग उसमें नहीं होता है। इसी प्रकार उस चित्तकीभी दशा हो जाती है जिस चित्तकी वृत्ति क्षीण हो गई हैं। एकाग्रचित्तका स्वरूप यह हो जाता है कि जिस २

यो०॥ यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ १ । ३८ ॥

यो०॥ क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्तिः॥१।४०॥

वस्तुका आकार उसके संमुख आवे वही वही आकार उस चित्तका भासने लगता है और जब कोई आकारभी उसके संमुख न होवे तो वह अपने स्वरूपमें स्थित शून्यसा भासता है। ऐसी चित्तकी दशाको समापत्ति कहते हैं। किन्तु यह बात निश्चय कर लेना चाहिये कि चाहे उसके संमुख गृहीता अर्थात् ग्रहण करनेवाले आत्माका आकार आवे चाहे ग्रहण अर्थात् इन्द्रियोंका आकार उसके संमुख आवे और चाहे ग्राह्य अर्थात् ग्रहण किये गये दृश्य पदार्थका आकार उसके संमुख आवे। तीन पदार्थ होते हैं। एक गृहीता अर्थात् जो किसी पदार्थका अनुभव करता है अर्थात् आत्मा। दूसरा ग्रहण अर्थात् जिसके द्वारा अनुभव किया जाता है अर्थात् इन्द्रिय। तीसरा ग्राह्य अर्थात् जिसका अनुभव किया जाता है अर्थात् सब दृश्यमात्र संसार।

इन तीनों प्रकारके पदार्थोंमेंसे जो जो पदार्थ चित्तके संमुख होवे और चित्त उसी २ पदार्थके आकार भासने लगे और उसके हट जानेसे शुद्ध भासे तो ऐसी दशाको समापत्ति कहते हैं। जब चित्तको आत्मतत्त्वमें लगाया जावे और चित्तकी आत्माकार वृत्ति हो जावे और आत्माकार भासे तो ऐसी दशाका नाम समापत्ति है। इसी प्रकार जब चित्तको इन्द्रियतत्त्वोंमेंसे किसीभी इन्द्रियतत्त्वमें लगाया जावे और चित्तकी इन्द्रियाकार वृत्ति हो जावे और इन्द्रियाकार भासे। और इसी प्रकार चित्तको स्थूल और सूक्ष्म दृश्यतत्त्व पंचमहाभूतादिकमें लगाया जावे और चित्तकी भूताकार वृत्ति हो जावे और भूताकार भासे तो ऐसी दशाका नाम समापत्ति है ॥ १ । ४० ॥ जब चित्त समापत्ति दशाको प्राप्त हो जाता है तो शुद्ध और एकाग्र होता है किन्तु समापत्तिकेभी चार भेद सवितर्का हैं, निर्वितर्का, सविचारा, और निर्विचारा ॥ शब्द अलग है, अर्थ अलग

यो०॥ तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ १ । ४१ ॥

यो०॥ स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ १ । ४२ ॥

है, और ज्ञान अलग है, किन्तु लोकमें गौ गौ गौ ऐसा समानही प्रतीत होता दीखता है। गौ यह शब्द है, गौ यह अर्थ है, गौ यह ज्ञान है। जब योगी गौ इस अर्थको चित्तके संमुख करे और गौ इस अर्थके तदाकार गवाकार वृत्ति चित्तकी होवे तब उस समापत्तिमें यदि गौ इस शब्दका और गौ इस अर्थका और गौ इस ज्ञानका भास होवे अर्थात् तीनोंका भास होवे तो इस समापत्तिको सवितर्का समापत्ति कहते हैं क्यों कि इस समापत्तिमें शब्द अर्थ और ज्ञान यह तीनों विकल्प संकीर्ण होते हैं। मनके स्थूल आभोगोंको वितर्क कहते हैं और सूक्ष्म आभोगोंको विचार कहते हैं। मनके विकल्प मनके आभोग हैं ॥ १ । ४१ ॥ और जब स्मृति शुद्ध हो जावे और शब्द और ज्ञानका भास दूर होवे, केवल अर्थ मात्रका भास होवे, मन अर्था-

कार वृत्ति होवे और अपने स्वरूपसे रहितसा होवे, केवल संमुख आये हुए गौ पदार्थके आकारको लेकर गवाकार भासे और गौ यह शब्द और गौ यह ज्ञान इन दोनोंसे रहित होवे तो ऐसी चित्तकी समापत्तिको निर्वितर्का कहते हैं। क्यों कि शब्द और ज्ञान इन दोनों वितर्कोंसे वह समापत्ति रहित है। शब्द और शब्दका ज्ञान यह दोनों श्रुत और अनुमानके अंग हैं और इस समापत्तिमें योगीको पदार्थका बोध स्वरूपसे अनुभव होता है इसलिये शब्द और अनुमान दोनों प्रकारके ज्ञानोंसे यह अनुभव विलक्षण होता है। और प्रत्यक्षसेभी विलक्षण है क्यों कि वह अनुभव दृष्ट इन्द्रियोंका विषय नहीं है। इसलिये इस अनुभवको प्रज्ञाका अनुभव कहते हैं और यह प्रज्ञासे अनुभव हुआ २ ज्ञान प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द तीनोंसे विलक्षण होता है॥ १। ४२॥ इस प्रकार इन दो समापत्तियोंसे स्थूल पदार्थोंको चित्तके संमुख करनेसे साक्षात्कार होता है। और जब

यो०॥ एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता॥ १। ४३॥

यो०॥ सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्॥ १। ४४॥

सूक्ष्म पदार्थोंको चित्तके संमुख करे और चित्त सूक्ष्मपदार्थाकारवृत्ति होवे और उस तदाकारवृत्तिमें सूक्ष्म पदार्थका भास ठीक २ होवे तो उसको सविचारा समापत्ति कहते हैं, और पूर्ववत् जो स्मृतिके पूर्ण शुद्ध होने-पर शब्द और ज्ञानका भास दूर होवे केवल अर्थमात्रका निर्भास होवे, मन अर्थाकारवृत्ति होवे और अपने स्वरूपसे रहितसा होवे, केवल संमुख आये हुए सूक्ष्म पदार्थके आकारको लेकर सूक्ष्म पदार्थाकार भासे और सूक्ष्म पदार्थके शब्द और ज्ञान दोनोंसे रहित होवे तो ऐसी चित्तकी समापत्तिको निर्विचारा कहते हैं॥ इन दोनोंका लक्षण पूर्व समापत्तिके अनुकूलही कहा गया है भेद इतनाही है कि सवितर्का और निर्वितर्का समापत्ति स्थूल पदार्थोंमें होती है और सविचारा और निर्विचारा सूक्ष्म पदार्थोंमें होती है॥ १। ४३॥ सूक्ष्मताकी

मर्यादा अलिंग अर्थात् प्रकृतिपर्यन्त है। पंचभूतोंका सूक्ष्म रूप पंचतन्मात्र हैं। और उन पंचतन्मात्रोंका सूक्ष्म रूप अहंकार है। और अहंकारका सूक्ष्म रूप बुद्धितत्त्व है और बुद्धितत्त्वका सूक्ष्म रूप अलिंग अर्थात् प्रकृति है। प्रकृतिसे आगे सूक्ष्मवस्तु उस प्रकार नहीं है जिस प्रकार महाभूतसे पंचतन्मात्र सूक्ष्म हैं और पंचतन्मात्रसे अहंकार और अहंकारसे बुद्धि और बुद्धिसे सूक्ष्म प्रकृति है किन्तु पुरुष प्रकृतिसे विलक्षण सूक्ष्म रूप है। इसलिये सूक्ष्मताकी मर्यादा प्रकृतिमेंही है ॥१।४४॥ यह चारों समापत्ति बहिर्वस्तु विषय हैं इसलिये इन समापत्तियोंसे जो समाधि होवेंगी वहभी बहिर्वस्तुविषय होवेंगी इसलिये उनका नाम सबीज समाधि है। इन समाधियोंका विषय बहिर्वस्तु है। प्रकृतिपर्यन्त यह सब बहिर्वस्तुही है। इन समाधियोंके नाम सवितर्क और निर्वितर्क और सविचार और निर्विचार हैं ॥ १ । ४५ ॥ जब निर्विचार समाधिमें

यो०॥ ता एव सबीजः समाधिः ॥१।४५॥ निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ १ । ४६ ॥

यो०॥ ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥१।४७॥ श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषयाविशेषार्थत्वात्॥१।४८॥

बुद्धि सत्व रजस् और तमस्से मुक्त होकर स्वच्छतासे स्थित होता है। तो उसको वैशारद्य कहते हैं। उस निर्विचार वैशारद्यमें अध्यात्मप्रसाद प्राप्त होता है। मन और बुद्धि दोनों अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं तब प्रज्ञाका आलोक शुद्धतासे भासता है ॥१।४६॥ उस चित्तके शुद्ध और समाहित होनेपर जो प्रज्ञा होती है वह शुद्ध और सत्य होती है। उस प्रज्ञामें असत्यकी गन्धमात्रभी नहीं होती है इसलिये उसको ऋतम्भरा कहते हैं ॥ १ । ४७ ॥ इस प्रज्ञाका अनुभव श्रुत अर्थात् शब्द और अनुमानके ज्ञानसे विलक्षण होता है इसलिये यह प्रज्ञाका अनुभव किया हुआ ज्ञान न प्रत्यक्ष है और न अनुमान है और न शब्द है क्यों कि सूक्ष्म भूतोंका और आत्मतत्त्वका अनुभव प्रत्यक्षसे नहीं होता है और न अनुमानसे होता है और न शब्दसे।

क्यों कि शब्दोंका संकेत स्थूल अर्थोंके साथ है और सूक्ष्म अर्थोंके विशेषोंको शब्द नहीं कह सकता है इसलिये शास्त्रोंमेंभी सामान्य रीतिसे पदार्थोंका वर्णन किया जाता है। पदार्थोंका विशेष अनुभव प्रज्ञासे होता है। इसलिये यह समाधिप्रज्ञाका ज्ञान श्रुत और अनुमान दोनोंसे विलक्षण है ॥ १ । ४८ ॥ प्रज्ञाके उपस्थित हो जानेपर प्रज्ञाके संस्कार अन्य (और) व्युत्थान आदिके संस्कारोंके विरोधी होते हैं। प्रज्ञाके संस्कारोंके उत्पन्न होनेसे फिर व्युत्थान संस्कार नहीं उत्पन्न हो सकते हैं। और प्रज्ञाकेही नये नये संस्कार उत्पन्न होते रहते हैं ॥ १ । ४९ ॥ उस प्रज्ञाके संस्कारोंकाभी निरोध हो जानेपर सर्व संस्कारोंका निरोध हो जाता है इसलिये फिर उस समाधिको निर्बीज समाधि कहते हैं क्यों कि उसमें फिर सब संस्कारोंका बीज नष्ट हो

यो०॥ तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ १ । ४९ ॥

यो०॥ तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ १ । ५० ॥

यो०॥ वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः ॥ १ । १७ ॥

जाता है इसलिये चित्त फिर संस्कारवाला नहीं बन सकता है। और उस दशामें पुरुष स्वरूपमें स्थित और शुद्ध और बुद्ध और मुक्त कहाता है ॥१।५०॥ संप्रज्ञात समाधि चार प्रकारकी होती है। सवितर्क, सविचार, सानन्द, अस्मितामात्र। चित्तके स्थूल आभोगको वितर्क कहते हैं, और सूक्ष्म आभोगको विचार कहते हैं, और हर्षको आनन्द कहते हैं, और एकात्मताका बोध होवे तो उसे अस्मिता कहते हैं। वितर्क विचार आनन्द और अस्मिता चारोंका भाव जिसमें होवे उस समाधिको सवितर्क कहते हैं। विचार आनन्द और अस्मिता तीनका बोध जिसमें होवे उसे सविचार कहते हैं। आनन्द और अस्मिताका भाव जिसमें होवे उसे सानन्द कहते हैं। अस्मिता मात्रका भाव जिसमें होवे उसे अस्मिता मात्र कहते हैं। यह सब समाधि

सालम्बन होती हैं। इन समाधियोंका अभ्यास वितर्क आदिके आलम्बनसे हो जाता है ॥ १ ।१७॥ किन्तु असंप्रज्ञात समाधिमें सालम्बन अभ्यास समाधिका साधक नहीं होता है। इस असंप्रज्ञात समाधिमें अत्यन्त वैराग्य साधन है। सर्व वृत्तियोंके दूर हो जानेपर संस्कार मात्र शेष जिस समाधिमें रह जावे और शून्यता ज्ञानरूप अभ्यासपूर्वक जो समाधि होवे तो उसको असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं। सर्व वस्तुके अभावके बोधका अभ्यास अर्थात् पूरी २ शून्यताका अभ्यास इस समाधिको दृढ करता है । किसीभी वस्तुकी इच्छा और द्वेष जीमें न उपजे और यहभी जीमें संकल्प न होवे कि मैं समाधिमें हूं और मैं समाधिको पाऊंगा इत्यादि ॥ १ । १८ ॥ विदेह देवोंको और प्रकृतिमें लीन मुक्त पुरुषोंको भवज्ञानपूर्वक समाधि

यो०॥ विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १ । १८ ॥

यो०॥ भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १ । १९ ॥

यो०॥ श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ १ । २० ॥

यो०॥ तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ १ । २१ ॥ मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ १।२२ ॥

होती है और वह संस्कारशेष चित्तसे कैवल्यकेसे सुखका अनुभव करते हैं किन्तु अधिकारवशात् चित्तकी फिर आवृत्ति हो जाती है और इसलिये उनको फिर जन्म धारण करना पड़ता है ॥ १ । १९ ॥ और कैवल्यमुक्त पुरुषोंकी समाधि श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि और प्रज्ञापूर्वक होती है इसलिये सर्व संस्कारोंका निरोध हो जानेसे चित्तके संस्कारके बीज दग्ध हो जानेसे फिर नहीं उगते हैं ॥ १ । २० ॥ समाधि उन पुरुषोंको शीघ्र निकटवर्ती हो जाती है जिनका पुरुषार्थ विषयमें संवेग तीव्र है जो तीव्र उद्योग करते हैं उनको समाधि शीघ्र निकट हो जाती है ॥ १ । २१ ॥ और जो उन तीव्र उद्योग करनेवाले पुरुषोंमेंभी मृदु मध्य

और अधिमात्रके भेदसे अत्यन्त तीव्र उद्योग करनेवाले हैं उनको औरभी शीघ्र समाधि निकट हो जाती है॥ १ । २२ ॥ अथवा ईश्वरप्रणिधानसेभी शीघ्र समाधिका लाभ हो जाता है जो पुरुष ईश्वरकी सेवा भक्ति और उपासना करता है उसपर ईश्वर अनुग्रह करके उसके चित्तको समाहित कर देता है। इसी प्रकार जो पुरुष सर्वज्ञ बुद्ध योगियोंकी सेवा भक्ति उपासना करता है तो वह सर्वज्ञ योगीभी उसपर कृपा करके उसके चित्तको समाहित कर देते हैं। किन्तु ऐसे पुरुषोंकी प्राप्ति कभी २ हो जाती है इसलिये सर्वकालमें ईश्वरकी उपासना सर्वथा फलदायक है॥ १ । २३ ॥ बोधिसत्व पुरुषकी अनेक समाधियोंकी चर्चा अष्टसाहस्रिकामें लिखी है उनमेंसे दो समाधियोंकी चर्चा यहांपर लिखते हैं॥ **सर्वधर्मापरिगृहीत समाधिकी व्याख्या॥** देखो अष्टसाहस्रिकाका प्रथम परिवर्त ॥ बोधिसत्वको प्रज्ञापारमितामें चरते हुए और प्रज्ञापारमितामें भावना करते हुए चित्तको न रूपमें

यो० ॥ **ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १ । २३ ॥**

स्थित करना चाहिये और न वेदनामें और न संज्ञामें और न संस्कारोंमें और न चित्तको विज्ञानमें स्थित करना चाहिये। (चर्याका अर्थ धर्मके मार्गमें स्थित होनेका है। प्रज्ञापारमितामें चरनेसे यह अभिप्राय है कि निर्विकल्पतामें चित्तको स्थित करना और अन्य व्यवहार और विषयोंके संकल्पोंको चित्तसे हटाना। प्रज्ञापारमिताकी भावनासे यह अभिप्राय है कि चित्तमेंसे अशुद्ध व्यवहारोंको हटाते हुए केवल सर्वज्ञतासंबन्धी संकल्प और विचारोंको चित्तमें वसाना और मनन करना जिसका फल निर्विकल्पताकी प्राप्ति और सर्वज्ञताका साक्षात्कार है। रूप आदिकी चर्चा पीछे कर चुके हैं।) । इसका क्या कारण है। क्यों कि जो वह चित्तको रूपमें स्थित करता है तो रूपके अभिसंस्कारमें चरता है और प्रज्ञापारमितामें नहीं चरता है। (इसका भाव यह है कि जो पुरुष जिस वस्तुमें चित्तको स्थित करता है उसी वस्तुके विषयके संकल्प विकल्प उस पुरुषके

चित्तमें उत्पन्न होते हैं और चित्त एकाग्रतामें स्थित नहीं रहता है । इसलिये यहांपर यह कहा है कि जो वह चित्तको रूपमें स्थित करता है तो रूपके अभिसंस्कारमें चरता है। क्यों कि अभिसंस्कार और मनस्कार चित्तके आभोग और संकल्पविकल्पोंका नाम है और क्यों कि रूपके विकल्पोंके होनेसे निर्विकल्पताका अभाव हो जाता है। इसलिये यह कहा है कि प्रज्ञापारमितामें नहीं चरता है ॥) इसी प्रकार जो वह चित्तको वेदनामें अथवा संज्ञामें अथवा संस्कारोंमें अथवा विज्ञानमें स्थित करता है तो वह वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञानके अभिसंस्कारमें चरता है और प्रज्ञापारमितामें नहीं चरता है इसका क्या कारण है। क्यों कि अभिसंस्कारमें चरता हुआ पुरुष प्रज्ञापारमिताको नहीं ग्रहण करता है। और न प्रज्ञापारमितामें योगको प्राप्त होता है और न प्रज्ञापारमिताको पूर्ण करता है अर्थात् न प्रज्ञापारमिताको पूरा २ पाता है । और प्रज्ञापारमिताको पूरा २ न पाता हुआ सर्वज्ञताको न पावेगा क्यों कि वह उस वस्तुको अर्थात् रूप आदिके अभिसंस्कारको परिग्रह किये हुए हैं अर्थात् धारण किये हुए है जिसको प्रज्ञापारमितामें नहीं ग्रहण करना चाहिये । (प्रज्ञापारमिताका अर्थ यहां निर्विकल्पता है) । इसका क्या कारण है। क्यों कि प्रज्ञापारमितामें रूप परिगृहीत नहीं है अर्थात् प्रज्ञापारमितामें रूपका ग्रहण न करना चाहिये । इसी प्रकार वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञानभी प्रज्ञापारमितामें परिगृहीत नहीं है। और जो रूपका अपरिग्रह है अर्थात् रूपका न ग्रहण करना है सो रूप नहीं है, इसी प्रकार जो वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञानका अपरिग्रह है सो वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान नहीं है। और प्रज्ञापारमिताभी प्रज्ञापारमितामें परिगृहीत नहीं है अर्थात् निर्विकल्पतामें निर्विकल्पताकेभी संस्कार नहीं होते हैं। इस प्रकारही इस प्रज्ञापारमितामें बोधिसत्व महासत्वको चरना चाहिये और यह बोधिसत्व महासत्वकी सर्वधर्मापरिगृहीत नाम समाधि है, जिसमें उदार

धर्मकी प्राप्ति है और जो अत्यन्त पूजनीय है और जिसमें प्रमाणकी गति नहीं है और जो श्रुत श्रावक और प्रत्येक बुद्धोंकोभी सुगमतासे नहीं प्राप्त हो सकती है॥ शून्यतासमाधिकी व्याख्या॥ देखो अष्टसाहस्रिकाका दूसरा परिवर्त ॥ निर्विकल्पसमाधिमें स्थित होनेके लिये बोधिसत्त्व महासत्वको शून्यता समाधिमें स्थित होना चाहिये । बोधिसत्व महासत्वको अत्यन्त उत्साहके साथ चित्तके संकल्पको दृढ करना चाहिये । न रूपमें चित्तको स्थिर करना चाहिये । न वेदनामें, न संज्ञामें, न संस्कारोंमें और न विज्ञानमें चित्तको स्थिर करना चाहिये अर्थात् इन सब पांचों स्कन्धोंके विकल्प मनमेंसे निकालना चाहिये ॥ न चित्तको नेत्रमें स्थित करना चाहिये, न रूपमें, न नेत्रके विज्ञानमें, न नेत्रके स्पर्शमें और न नेत्र और पदार्थके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुख दुःख वेदनामें चित्तको स्थिर करना चाहिये । इन पांचों प्रकारके संकल्पोंको चित्तमेंसे निकालना चाहिये । (प्रत्येक इन्द्रियके पांच प्रकारके संग होते हैं । इन्द्रियका संग, इन्द्रियके अर्थका संग, इन्द्रिय और अर्थके ज्ञानका संग, इन्द्रिय और इन्द्रियके अर्थके संयोगका संग और इन्द्रिय और इन्द्रियके अर्थके संयोगसे उत्पन्न सुख दुःखका संग । इन पांचो संगोसे मनको हटावे ।) ॥ इसी प्रकार श्रोत्र नासिका जिह्वा त्वचा और मनके पांचों प्रकारके संगोंमें चित्तको न लगावे, इस प्रकार षडायतनके विषयके संकल्पों-को चित्तसे निकालना चाहिये ॥ न चित्तको पृथिवी धातुमें स्थिर करे, न जल धातुमें, न अग्नि धातुमें, न वायु धातुमें, न आकाश धातुमें और न विज्ञानधातु अर्थात् बुद्धितत्त्वमें चित्तको स्थिर करे । इस प्रकार इन छः धातुओंके संकल्पोंको चित्तमेंसे निकालना चाहिये ॥ इन सब पंचस्कन्ध, षडायतन और षड्धातुके विषयके संकल्पोंको संस्कार कहते हैं । यह सब समाधिके बाधक हैं ॥ न चित्तको दश स्मृत्युपस्थान अर्थात् अनुस्मृतियोंमें स्थित करना चाहिये, न चार संप्रहाणोंमें, न चार ऋद्धिपादोंमें, न पांच श्रद्धादि इन्द्रियोंमें,

न पांच श्रद्धादिबलोंमें, न सात संबोध्यंगोंमें, और न आठ मार्गांगोंमें चित्तको स्थिर करना चाहिये ॥ (यह सब सैंतीस बोधिपक्ष कहाते हैं। यह समाधिके साधक हैं किन्तु इनमेंभी चित्त पड़ा रहनेसे निर्विकल्पता पूरी २ नहीं होती है इसलिये इनकेभी संकल्पोंको चित्तमेंसे निकालना चाहिये।) ॥ न चित्तको श्रोतआपत्ति फलमें स्थित करना चाहिये, न सकृदागामि फलमें, न अनागामि फलमें और न अर्हत्त्वमें चित्तको स्थिर करना चाहिये ॥ (चित्तसे इन चार फलोंकीभी इच्छाको निकालना चाहिये। यद्यपि यह धातु असंस्कृत हैं संस्काररहित हैं तोभी पूर्ण सर्वज्ञताका भास इन चार भूमियोंमें नहीं होता है। इसलिये इन चारोंके विषयके संकल्पोंकोभी चित्तमेंसे निकालना चाहिये ॥ जो पुरुष सात जन्म और धारण करेगा और अधिक धारण नहीं करेगा, सात जन्म पीछे मुक्त हो जावेगा, उसका नाम श्रोत आपन्न है। उसकी भूमिके फलको श्रोतआपत्ति फल कहते हैं ॥ जो पुरुष एक बार और इस पृथिवीपर आकर जन्म धारण करेगा और फिर आवागमनसे मुक्त हो जावेगा उसे सकृदागामी कहते हैं। उसकी भूमिके फलको सकृदागामिफल कहते हैं ॥ जो पुरुष अब इस चोलेको छोड़कर स्वर्गलोकोंमेंसे किसी लोकमें जावेगा और फिर वहींसे मुक्त हो जावेगा, फिर न जन्मेगा, उसको अनागामी कहते हैं। उसकी भूमिके फलको अनागामिफल कहते हैं ॥ जो पुरुष यहांही वासनाकी निवृत्तिको साक्षात्कार करके मुक्त हो जाता है, आवागमनके बन्धनसे छूट जाता है, उसको अर्हत् कहते हैं। अर्हत्कोही श्रावकके नामसेभी पुकारते हैं। अर्हत् होनेका नाम अर्हत्त्व है ॥ इन चारों भूमियोंके फलकी चाहनाको चित्तमेंसे निकलना चाहिये)॥ न प्रत्येक बुद्धत्वमें चित्तको स्थिर करना चाहिये और न बुद्धत्वमें चित्तको स्थिर करना चाहिये। इनके विषयके संकल्पभी चित्तसे निकालनेसे शून्यता समाधि होती है ॥ (प्रत्यके बुद्ध उस पुरुषको कहते हैं जो यहांही वासनाकी निवृत्तिके

साक्षात्कारको करके मुक्त हो जाता है और फिर आवागमनके बन्धनमें नहीं आता है। किन्तु प्रत्येक बुद्ध जगत्के असंख्यात प्राणियोंका उपकार नहीं कर सकता है। किसी किसी प्राणीको शान्ति दे जाता है॥ और बुद्ध उस पुरुषको कहते हैं जो यहांही वासनाकी निवृत्तिके साक्षात्कारको करके असंख्यात प्राणियोंकोभी मुक्त करके आपभी महानिर्वाणको प्राप्त हो जाता है॥ इनकी भूमियोंको प्रत्येक बुद्धत्व और बुद्धत्व कहते हैं। इनके फलकीभी इच्छा चित्तमें यदि होवे तो वह इच्छा शून्यता समाधिको तोडती है इसलिये इनके विषयके संकल्पोंकोभी चित्तमेंसे निकालना चाहिये॥) इसी प्रकार उक्त रूप आदि सब पदार्थोंसे चित्तको हटाना चाहिये और उक्त रूप आदिके सब प्रकारके गुणोंसेभी चित्तको शून्य करना चाहिये। और दोनों प्रकारकेही संकल्प चित्तमें उत्पन्न न होवें, न भले न बुरे, तो चित्त निर्विकल्प होता है॥ क्यों कि सर्व

यो०॥ द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्॥ ४ । २३॥

यो०॥ तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्॥ ४ । २४॥

शून्यता समाधिमें चित्त न किसी संस्कारयुक्त पदार्थमें स्थित होता है और न किसी संस्काररहित पदार्थमें स्थित होता है और न किसीसे व्युत्थितही होता है। किसी प्रकारके संस्कारकोभी चित्त अपनेमें नहीं रखता है किन्तु स्वरूपमें स्थित शून्यसा केवल भासता है। इस समाधिमें चित्त शून्य (सूना) होता है अर्थात् संस्कारोंसे रहित होता है इसीलिये इस समाधिको शून्यता समाधि कहते हैं॥ यह संक्षेपसे शून्यता समाधिका अनुवाद किया है॥ **समाहित चित्तकी दशा**॥ मन पदार्थोंके संगसे उपरक्त हुआ २ और आत्मासे संयुक्त हुआ २ सर्वार्थ होता है। अनेक प्रकारके संकल्प विकल्पवाला होता है॥ ॥ ४ । २३॥ और यह मन अनेक वासनाओंसे भरा हुआ चित्रसा दीखता हुआभी आत्माको मोक्ष प्राप्त

करानेके लिये है। जैसे सब वस्तु सामग्री पुरुषके निमित्त होती है उसी प्रकार यह मनभी पुरुषके भोग और मोक्षके अर्थ है ॥ ४ । २४ ॥ जब पुरुष पदार्थोंके विशेष अंगोंका दर्शी और ज्ञानी हो जाता है तो पुरुषकी आत्मभावकी भावनाभी निवृत्त हो जाती है। मैं क्या था क्या हूं और क्या होऊंगा ये संकल्प दूर हो जाते हैं ॥ ४ । २५ ॥ तब चित्त विवेककी ओर झुक जाता है और मोक्षकी ओर चलता है ॥ ४ । २६ ॥ कभी २ अहंकार और ममकारके संकल्पभी उत्पन्न हो जाते हैं। पूर्वसंस्कारोंके उदय हो जानेसे संकल्प आदि उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ४ । २७ ॥ इनकाभी नाश क्लेशोंकी निवृत्तिके समान करना चाहिये ॥ ४ । २८ ॥

यो० ॥ विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥ ४ । २५ ॥

यो० ॥ तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ ४ । २६ ॥

यो० ॥ तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ ४ । २७ ॥

यो० ॥ हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ ४ । २८ ॥

यो० ॥ प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ ४ । २९ ॥

धर्ममेघ समाधिकी चर्चा ॥ यह नाम ललितविस्तर और पातंजलयोग दोनोंमें आता है। देखो पातंजल योसूगत्र ॥ जब चित्तमेंसे सर्वथा पूरी २ रजस् और तमस्की निवृत्ति हो जाती है और चित्त स्वरूपमें स्थित होता है और सत्त्वपुरुषान्यताख्याति ज्ञानसे पूर्ण होता है तो ऐसी दशाको शास्त्रमें प्रसंख्यान कहते हैं ॥ उस प्रसंख्यानके प्राप्त हो जानेपरभी यदि पुरुष कुछभी चित्तमें इच्छा नहीं रखता और उस प्रसंख्यानसेभी विरक्त रहता है तो सर्वथा विवेकख्याति शुद्ध हो जानेसे धर्ममेघ नाम समाधिको प्राप्त हो जाता है (इस समाधिमें संस्कारके बीजोंका क्षय हो जानेसे फिर कुछ संकल्पोंकी फुरना नहीं होती है) ॥ ४ । २९ ॥

धर्ममेघ समाधिको पा लेनेसे क्लेश और कर्मोंकी निवृत्ति हो जाती है ॥४।३०॥ तब सब आवरणरूप मलोंसे रहित पुरुषको ज्ञान तो बहुत हो जाता है और जाननेके योग्य वस्तु अल्प रह जाती है अर्थात् उस कालमें पुरुष सब वस्तुको जान लेता है ॥४।३१॥ तब गुण कृतार्थ हो जाते हैं। उनका पुरुषार्थ पूरा हो जाता है इसलिये उन गुणोंके परिणामोंके क्रमकीभी समाप्ति हो जाती है ॥४।३२॥ यह समाधिकी व्याख्या समाप्त हुई ॥६५॥ध०॥ प्रज्ञाके बलसे पुरुष अनवमृष्य हो जाता है। जिस पुरुषमें प्रज्ञाका बल स्थिर हो जाता है उसका फिर कोई अवमर्दन नहीं कर सकता है। प्रज्ञावान् पुरुष यथावत् सब वस्तुओंको जान लेता है फिर उसको कोई समाधियोगसे गिरा नहीं सकता है॥ प्रज्ञाकी प्राप्तिके कालमेंही देवता योगीका निमंत्रण करते

यो०॥ ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः॥४।३०॥तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानं स्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥
यो०॥ ॥४।३१॥ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ४ । ३२ ॥
ध०॥ प्रज्ञाबलं धर्मालोकमुखमनवमृष्यतायै संवर्तते ॥ ६६ ॥
यो०॥ स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् ॥ ३ । ५१ ॥

हैं उस समय वह योगी उन देवताओंके निमंत्रणको स्वीकार नहीं करता है और अपनी प्रज्ञाके बलसे उन सब पदार्थोंकी अनित्यताका निश्चय करके उनमें संग नहीं करता है। देखो योगसूत्र ॥ जब प्रज्ञाचक्षुःको योगी साक्षात्कार करता है तब स्थानी देवता उस योगीका निमन्त्रण करते हैं कि भो. यहां बैठिये, यहां रमिये, यह कमनीय भोग हैं, यह कमनीया कन्या है, यह रसायन है और जरा और मृत्युको दूर करती है, यह आकाशगामी विमान है, यह कल्पवृक्ष है, पुण्यरूप यह मंदाकिनी गंगा है, यह सिद्ध और महर्षि सब अनुकूल हैं, दिव्य श्रोत्र और दिव्य चक्षुः प्राप्त है, वज्रके समान शरीर है।

यह सब आयुष्मान् अर्थात् अधिक आयुःवाले आपने अपने तपस्के बलसे प्राप्त किया है आप इस अजर और अमरस्थानको स्वीकार कीजिये। उस समय उस योगीको यह भावना करनी चाहिये कि घोरसंसाररूप अग्निमें पचते हुए मैंने प्रज्ञारूपी जलको प्राप्त किया है और घोर अंधकारमें पड़े हुए इस प्रज्ञारूपी दीपकके प्रकाशको उत्पन्न किया है और यह विषयभोगरूपी पवन इस दीपकको बुझानेवाली है। इसलिये मैं इन विषयोंको जो अनित्य हैं कदापि स्वीकार न करूंगा। ऐसी भावना जीमें करके उन विषयोंका संग स्वीकार न करे। और उनके इस निमन्त्रणको देखकर यहभी न जाने कि मैं बड़ा हूं! ऐसाभी विस्मयरूप मान करनेसे पतित हो जानेकी शंका है। क्यों कि जब जीमें मान उत्पन्न हो जावेगा तो फिर भावना आगेको न बढ़ेगी क्यों कि योगकी भावनाकी दूसरीही भूमिपर निमन्त्रण होना प्रारम्भ होता है।

ध०॥ स्मृतिसंबोध्यंगं धर्मालोकमुखं यथावद्धर्मप्रज्ञानतायै संवर्तते ॥ ६७ ॥

योगीकी चार भूमि कही हैं। प्राथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योतिः और अतिक्रान्तभावनीय। अभ्यास करनेवाले योगीको प्राथमकल्पिक कहते हैं जिसमें कुछ ज्योतिःप्रकाशका उदयही हुआ हो। ऋतंभरा प्रज्ञा जब हो जाती है तब उस योगीको मधुभूमिक कहते हैं। इस भूमिवाले योगीका देवता निमन्त्रण करते हैं। और भूत और इन्द्रिय जिसके वशीभूत हो जाते हैं उसको प्रज्ञाज्योतिः कहते हैं। सब साधनोंकी पूरी २ जब भावना हो जाती है और भावित पदार्थका साक्षात्कार हो जाता है और भावना करनेको शेष कुछ नहीं रहता है तो उसको अतिक्रान्तभावनीय कहते हैं। यह अन्तकी भूमि है। इन दो भूमियोंमें पहुंचकर फिर पतित होनेकी शंका नहीं रहती है॥३।५१॥यो०॥ ६६ ॥ ध०॥ अब सात संबोधि अर्थात् सर्वज्ञताके अंग कहते हैं इनको सम्बोध्यंग कहते हैं॥ स्मृतिनाम सम्बोध्यंग है और यह धर्मालोकमुख यथावत् धर्मके प्रज्ञानको उत्पन्न करता है। स्मृति सर्वज्ञताका अंग है इससे सब पदार्थों

और धर्मोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ ध० ॥ धर्मका प्रविचय अर्थात् यत्नसे ढूंढनाभी सम्बोधिका अंग है और यह धर्मालोकमुख सब धर्मोंकी पूरी पूर्णताको उत्पन्न करता है। जो पुरुष बहुत यत्नसे धर्मको ढूंढता है उसको पूरा २ धर्म प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ ध० ॥ वीर्य अर्थात् अति उत्साह सम्बोधिका अंग है और यह धर्मालोकमुख सुविचित्र बुद्धिताको उत्पन्न करता है। वीर्य सम्बोध्यंगसे पुरुष सुविचित्र बुद्धिवाला हो जाता है। लोग उसकी विचित्र बुद्धिको देखकर आश्चर्य करते हैं वीर्यमेंही यह शक्ति है कि पुरुष मोक्षकी प्राप्तिके लिये अद्भुत और विस्मयको उत्पन्न करनेवाला पुरुषार्थ करता है जिससे उसकी बुद्धि विचित्र भासती है। विचित्र बुद्धि नाना उपायोंको शीघ्र २ दिखाती जाती है ॥ ६९ ॥ ध०॥

ध०॥ **धर्मप्रविचयसंबोध्यंगं धर्मालोकमुखं सर्वधर्मप्रतिपूर्त्यै संवर्तते ॥ ६८ ॥**

ध०॥ **वीर्यसंबोध्यंगं धर्मालोकमुखं सुविचित्रबुद्धितायै संवर्तते ॥ ६९ ॥**

ध०॥ **प्रीतिसंबोध्यंगं धर्मालोकमुखं समाध्यायिकतायै संवर्तते ॥ ७० ॥**

ध०॥ **प्रश्रब्धिसंबोध्यंगं धर्मालोकमुखं कृतकरणीयतायै संवर्तते ॥ ७१ ॥**

प्रीति सम्बोधिका अंग है और यह धर्मालोकमुख समान अध्ययनशीलताको उत्पन्न करता है। समका अर्थ समान अध्यायका अर्थ अध्ययन है। समाध्यायिकका अर्थ समान अध्ययनशील है। जो पुरुष प्रीतिको चित्तमें रखता है उसकी वह प्रीति अध्ययन और स्वाध्यायमें पुरुषको बराबर समानतासे लगाये रखती है और पुरुष घबराता नहीं है। फिर लगातार अध्ययनका फल पुरुषको उद्योगी और शान्त बना देता है ॥ ७० ॥ ध० ॥ प्रश्रब्धि अर्थात् विश्वासभी संबोधिका अंग है। और यह धर्मालोकमुख कृतकरणी-यताको उत्पन्न करता है। करनेके योग्य कामको करणीय कहते हैं। करणीय कर्मको जो कर चुके उसे

कृतकरणीय कहते हैं। कृतकरणीय होनेका नाम कृतकरणीयता है। जिस पुरुषमें विश्वास वास करता है वह पुरुष अपने विश्वासके फलसे कर्तव्यकर्मको पूरा करके कृतकरणीय हो जाता है। विश्वास होनेसेही कर्ममें प्रवृत्ति होती है। विश्वाससेही श्रद्धा बढ़ती है। विश्वास कार्यका साधक है॥ ७१ ॥ ध०॥ समाधि संबोधिका अंग है और यह धर्मालोकमुख समताका अनुवर्तन करता है। समाधिके अभ्याससे सब पदार्थ समान अनुकूल हो जाते हैं। समाहित पुरुष सब पदार्थोंमें समताको रखता हुआ सबको समान जानकर समदृष्टिका पालन करता है। उसका किसीसे वैर विरोध और प्रेम और प्रीति नहीं रहती है। वह सब जीवोंसे रागद्वेषरहित समान व्यवहारका पालन करता है॥७२॥ध०॥उपेक्षाका अर्थ उदासीनता है। उप-

ध०॥ **समाधिसम्बोध्यंगं धर्मालोकमुखं समतानुरोधाय संवर्तते ॥ ७२ ॥**

ध०॥ **उपेक्षासम्बोध्यंगं धर्मालोकमुखं सर्वोपपत्तिजुगुप्सनतायै संवर्तते ॥ ७३ ॥**

ध०॥ **सम्यग्दृष्टिर्धर्मालोकमुखं न्यायावक्रमणतायै संवर्तते ॥ ७४ ॥**

पत्तिका अर्थ योग्यता है। जुगुप्सनताका अर्थ घृणा है। उदासीनता संबोधिका अंग है और यह धर्मालोकमुख सब उपपत्तियोंमें घृणाको उत्पन्न करता है। उपेक्षा आ जानेसे फिर योग्यताकी ओरभी दृष्टि नहीं जाती है जहां होना संभव होवे उसे उपपत्ति कहते हैं। सब वस्तुओंके होनेका संभवभी जहां होवे वहांभी उदासीन पुरुषकी दृष्टिमें घृणा और वैराग्य रहता है। उपेक्षा यह एक बड़ा गुण है जो चित्तको संभव और असंभव योग्य और अयोग्य वस्तुओंसे विरक्त करके वृत्तियोंसे शून्य बना देता है। उपेक्षा सब वस्तुओंसे राग और द्वेषकी निवृत्तिको उत्पन्न करती है॥७३॥ध०॥नास्तिकताका नाम मिथ्यादृष्टि है इसलिये आस्तिकताका नाम सम्यग्दृष्टि है। यह धर्मालोकमुख न्यायव्यवहारकी अवक्रमणताको उत्पन्न करता है। जो पुरुष आस्तिक

बुद्धिमें स्थित होकर शुद्ध दर्शनका आश्रय स्वीकार करता है शुद्ध शास्त्रको मानता है वह पुरुष न्याययुक्त धर्मके मार्गसे पतित नहीं होता है। और इसलिये न्यायपूर्वक धर्मके मार्गपर चलकर शुद्ध धर्मकी गतिको पा लेता है ॥७४॥ध०॥ सम्यक्‌का अर्थ सत्य और ठीक है। सम्यक् संकल्पका दूसरा नाम सम्यङ्मनः भी है। मनमें शुद्ध संकल्पोंका होना, धर्म और योगकी इच्छाके संकल्पोंका होना सम्यक् संकल्प है। यह धर्मालोकमुख सब प्रकारके मनके कल्पविकल्प और नाना प्रकारके परिकल्पोंको दूर करता है। मनके भाव सुधर जानेसे पुरुषके मनमें फिर मिथ्या और अधर्मकी और भ्रान्तिकी उत्पन्न करनेवाली इच्छा नहीं रहती हैं। इसलिये मनके भावोंका सुधार करना चाहिये मनके राग द्वेष काम क्रोध लोभ ईर्ष्या द्रोह

ध०॥ सम्यक्संकल्पो धर्मालोकमुखं सर्वकल्पविकल्पपरिकल्पप्रहाणाय संवर्तते ॥ ७५ ॥

ध०॥ सम्यग्वाग् धर्मालोकमुखं सर्वाक्षररुतघोषवाक्पथप्रतिश्रुतसमतानुबोधनतायै संवर्तते ॥ ७६ ॥

आदिके मिथ्या संकल्पोंको अशुद्ध जानकर त्याग देनेसे मनके भाव ठीक हो जाते हैं ॥ ७५ ॥ ध० ॥ वाणीके सच्चा होनेका नाम सम्यग् वाक् है। वाणीसे असत्यवचन कठोरवचन सूचकवचन निष्प्रयोजन वचन न बोलनेसे वाणीका भावभी सच्चा हो जाता है। रुतका अर्थ ध्वनि है। घोष प्रयत्नका नाम है। वाक्‌पदका अर्थ शब्द है। प्रतिश्रुतका अर्थ स्वीकृत है, किन्तु यहां प्रसंगसे वाक्यका अर्थ भासता है सुना जाय जो सो प्रतिश्रुत और वाक्य कहाता है। समताका अर्थ समानता है। और अनुबोधनताका अर्थ अनुबोध और ज्ञान है। सम्यग्वाक् धर्मालोकमुख सब वाणीके अंग अक्षर ध्वनिप्रयत्न और वाक्यकी समानताके ज्ञानको उत्पन्न करता है। ठीक २ वाणीके व्यवहारको आचरण करनेसे पुरुषको दुष्ट शब्द

और वाक्योंके उच्चारण करनेका अभ्यास छूट जाता है और शुद्ध और सत्य वचन बोलनेका अभ्यास हो जाता है। इससे वाणी सत्य हो जाती है और सत्य हो जानेसे वाणीसे निकले हुए वचन यथाभूत फलने लगते हैं ॥ ७६ ॥ ध० ॥ कर्मान्तका अर्थ कर्म है, शरीरके कर्मोंको कर्मान्त कहते हैं। शरीरके ठीक २ कर्मोंके आचरणको सम्यक् कर्मान्त कहते हैं। अपने कर्मोंके यथावत् फल प्राप्त होनेको स्वकर्म विपाकता कहते हैं। जो पुरुष ठीक २ नियमपूर्वक शरीरसे धर्मकर्मोंका आचरण करता है उसको ठीक २ धर्मके आचरणोंका शुभफल प्राप्त होता है। ॥ ७७ ॥ ध० ॥ आजीवका अर्थ आजीविका और वृत्ति है। प्रतिप्रश्रब्धिका अर्थ विश्वास है। सम्यक् आजीव धर्मालोकमुख सर्व हर्षको उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंके

ध०॥ **सम्यक्कर्मान्तो धर्मालोकमुखं स्वकर्मविपाकतायै संवर्तते ॥ ७७ ॥**

ध०॥ **सम्यगाजीवो धर्मालोकमुखं सर्वहर्षणप्रतिप्रश्रब्ध्यै संवर्तते ॥ ७८ ॥**

ध०॥ **सम्यग्व्यायामो धर्मालोकमुखं परतीरगमनाय संवर्तते ॥ ७९ ॥**

विश्वासको उत्पन्न करता है। जो पुरुष धर्मपूर्वक वृत्तिसे जीवन व्यतीत करता है और धर्मके अर्थ चाहे शरीर छूट जावे, किन्तु वृत्तिके अर्थ धर्मको नहीं छोड़ता है, उस पुरुषको सब हर्षको उत्पन्न करनेवाली वस्तुओंका ऐसा विश्वास हो जाता है कि वह यह बात निश्चय कर लेता है कि धर्मकी वृत्तिही अत्यन्त हर्षकी देनेवाली है। और अधर्मकी वृत्तिसे कदापि हर्ष उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये सर्वथा धर्मकी वृत्तिका आचरण करता है ॥ यम और नियममें इन अंगोंकी चर्चा हो चुकी है। सम्यक्कर्मान्त अहिंसा और अस्तेय और ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहका नाम है। सत्य और स्वाध्याय सम्यग्वाक्के नाम हैं। सन्तोष सम्यक् आजीवका नाम है। ईश्वरप्रणिधान और तपस् सम्यक्संकल्पके नाम हैं ॥७८॥ ध० ॥ व्यायामका

अर्थ परिश्रम करना और पुरुषार्थ करना है। जो पुरुष मन वाणी और शरीरसे ठीक २ व्यायाम करता है ठीक २ पुरुषार्थ करता है वह पुरुष परतीरको गमन करता है कर्मके पारको पहुंचता है। जितना पुरुषार्थ करना चाहिये उतना पुरुषार्थ जो पुरुष करता है तो वह पुरुष उस कर्मके ठीक यथावत् फलको प्राप्त होता है। जो अधिक पुरुषार्थ करता है तो शरीर आदिके दुःखी हो जानेसे कर्मकी सिद्धिमें विघ्न हो जाता है जैसे अधिक उपवास आदि करनेसे शरीर अति कृश होकर समाधिकी योग्यताको नहीं पहुंचता है। और जो पुरुषार्थ अल्प किया जावे तो विषयोंकी पूरी निवृत्ति न होनेसेभी समाधिकी योग्यताको पुरुष नहीं पहुंचता है। इसमें तंत्री (सितार) का दृष्टान्त विद्वान् पुरुषोंने दिया है। यदि सितारकी खुट्टी बहुत खेंच दी जावें तो तार बहुत खिंच जानेसे स्वर यथावत् उत्पन्न नहीं होता है। और जो सितारकी

ध०॥ सम्यक्स्मृतिर्धर्मालोकमुखमवस्मृत्यमानसिकतायै संवर्तते ॥ ८० ॥

खुट्टी ढीली कर दी जावें तो तार बहुत ढीले हो जानेसेभी स्वर यथावत् उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये जब सितारकी खुट्टी ठीक २ योग्यतासे खिंची होती हैं तो तारोंके ठीक होनेसे स्वर यथावत् उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जो पुरुष शरीरसे इन्द्रियोंसे और मनसे सम्यग्व्यायामका आचरण करता है वह पुरुष कर्मकी सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। आसन और प्रत्याहार इसी अंगके भेद हैं ॥ ७९ ॥ ध० ॥ सम्यक् स्मृति धर्मालोकमुख है। और यह बुरी स्मृतियोंको मनसे निकालता है। अवस्मृतिका अर्थ बुरी स्मृति है और वह स्मृति जो समाधि और ध्यानको रोकती हैं। जो मनमें न रहे सो अमानसिक कहा जाता है स्मृतिके शुद्ध हो जानेसे मनके वह भाव निकल जाते हैं जो बुरी स्मृति बनकर धारणा और ध्यानको रोकते हैं। यह सम्यक्स्मृति धारणा और ध्यानका नाम है ॥ ८० ॥ ध० ॥

सम्यक्समाधिका अभ्यास करनेसे कोपसे रहित चित्तको समाधि प्राप्त हो जाती है। जबतक चित्तमें क्रोध रहता है तबतक समाधि नहीं प्राप्त हो सकती है। समाधिको केवल कोप क्रोध अर्थात् द्वेष रोकता है। इसलिये चित्तको क्रोधसे रहित करना चाहिये। क्रोधसे रहित हो जानेपर समाधिकी प्राप्ति होगी। समता दृष्टिसे और संसारके पदार्थोंको अनित्य जाननेसे क्रोधकी निवृत्ति हो जाती है। समाधिकी चर्चा समाधिव्याख्यामें और संयमकी व्याख्यामें कर चुके हैं॥ दश अनुस्मृति और प्रहाण और ऋद्धिपाद और पांच इन्द्रिय और पांच बल और सात संबोध्यंग और आठ मार्ग इन सबका नाम बोधिपक्ष है और यह सब सैंतीस हुए। यह सब सर्वज्ञताकी प्राप्तिके पक्ष अर्थात् सहायक हैं (देखो १८ पत्रेपर टिप्पणी)॥८१॥ध०॥ बोधिका अर्थ ज्ञान और सर्वज्ञता है। सर्वज्ञताके विषयमें जो चित्त लगा होवे और संसारकी इच्छाओंसे रहित होवे उस चित्तको

ध०॥ सम्यक्समाधिर्धर्मालोकमुखमकोप्यचेतःसमाधिप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ ८१ ॥

ध०॥ बोधिचित्तं धर्मालोकमुखं त्रिवंशानुपच्छेदाय संवर्तते ॥ ८२ ॥

बोधिचित्त कहते हैं। बुद्ध धर्म और संघका नाम त्रिवंश है। सर्वज्ञ योगीका नाम बुद्ध है। सर्वज्ञताका उपदेश उसका धर्म है। उस धर्मको स्वीकार करनेवाले पुरुषोंका नाम संघ है। न तोड़नेका नाम अनुपच्छेद है। जो पुरुष सर्वज्ञताकी प्राप्तिके निमित्त चित्त उत्पन्न करता है और उस चित्तकी लगातार संतानमें यदि स्थित होगा तो उसके सर्वज्ञता फलको पाकर सर्वज्ञ योगीके वंशको न तोड़कर आगेको उसके वंशकी परंपराको बढ़ावेगा। जैसे गृहस्थ पुरुषोंका वंश गृहमें संतान होनेसे बढ़ता है इसी प्रकार सर्वज्ञ योगियोंका वंश सर्वज्ञ पुरुषके उत्पन्न होनेसे चलता है। इसलिये सर्वज्ञताचित्त सर्वज्ञ योगियोंके कुल और वंशको बढ़ाता है। और जो पुरुष सर्वज्ञताकी प्राप्तिके संकल्प निरन्तर चित्तमें उत्पन्न करता है वह पुरुष सर्वज्ञताको पाकर जगत्का

कल्याण करनेमें तत्पर होकर और जगत्का कल्याण करके परमनिर्वाण ब्रह्मकी प्राप्तिको पा लेता है ॥ चित्तके संकल्पोंके उत्पन्न होनेकोही भावना कहते हैं। जितने २ अधिक संकल्प सर्वज्ञताके उत्पन्न होते हैं उतनी २ ही भावना योगकी बढ़ती जाती है और चित्तका व्युत्थान घटता जाता है। जब क्रमसे भावना पूरी हो जाती है और व्युत्थान पूरा निवृत्त हो जाता है तो सर्वज्ञताका साक्षात्कार हो जाता है ॥८२॥ध०॥ चित्तकी इच्छाका नाम आशय है। यहां सर्वज्ञताकी इच्छाका नाम आशय है। यानका अर्थ मार्ग है। सर्वज्ञताके पानेके मार्गको यान कहते हैं। वह यान दो प्रकारका है। महायान और हीनयान।

ध०॥ आशयो धर्मालोकमुखं हीनयानास्पृहणतायै संवर्तते ॥ ८३ ॥

ध०॥ अध्याशयो धर्मालोकमुखमुदारबुद्धधर्मावलम्बनतायै संवर्तते ॥ ८४ ॥

महायान वह मार्ग है जो बुद्ध भूमिपर पहुंचाकर सर्वज्ञताका साक्षात्कार कराता है और हीनयान वह मार्ग है जो श्रावक और प्रत्येकबुद्ध भूमिपर पहुंचाकर सर्वज्ञताका साक्षात्कार कराता है। आशय रूप धर्मालोकमुख पुरुषको हीन यानकी इच्छासे रहित कर देता है। जो पुरुष आशय रूप धर्मालोकमुखका आश्रय करता है उसके चित्तसे श्रावक और प्रत्येकबुद्ध होनेकी इच्छा निवृत्त हो जाती है। श्रावक आदिका अर्थ शून्यता समाधिकी व्याख्यामें लिख चुके हैं ॥ ८३ ॥ ध० ॥ उदार आशयका नाम अध्याशय है जो पुरुष उदार आशयको चित्तमें रखता है उसको उदार बुद्धधर्मका अवलम्बन प्राप्त

१ महावस्तु अवदानमें बीस अध्याशय वर्णन किये हैं। १ कल्याणाध्याशय, अर्थात् पुण्य कर्म करनेकी इच्छा। २ स्निग्धाध्याशय, अर्थात् कभी क्रोधसे चलायमान न होना। ३ मधुराध्याशय, अर्थात् दूसरे जीवोंको प्रसन्न करनेका विचार। ४ तीक्ष्णाध्याशय, अर्थात् इस लोकके पदार्थोंका बोध होना। ५ विपुलाध्याशय, अर्थात् सकल जीवोंके साथ अति उपकार करनेकी इच्छा। ६ विचित्राध्याशय, अर्थात् विना अहंकारके दान करना।

होता है। असंख्यात प्राणियोंको विना मुक्त किये निर्वाणको न स्वीकार करनाही उदार बुद्धधर्म कहाता है। यह उदार बुद्धधर्म उसको प्राप्त होता है जिसका उदार आशय निरन्तर बना रहता है और कदापि किसी कालमें किसी प्रकारभी नहीं टूटता है ॥ ८४ ॥ ध० ॥ कर्म करनेका नाम प्रयोग है। कुशल

ध०॥ **प्रयोगो धर्मालोकमुखं सर्वकुशलधर्मप्रतिपूर्त्यै संवर्तते ॥ ८५ ॥**

धर्मका अर्थ पुण्यकर्म है। प्रयोग धर्मालोकमुख सब पुण्य कर्मोंकी पूर्णताको उत्पन्न करता है। विना कर्म किये किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती है। इसलिये कर्म करना यह धर्मालोकमुख है। और कर्म

---

७ उदाराध्याशय, अर्थात् दान देनेकी उदारता। ८ अनुपहताध्याशय, अर्थात् दुर्ष्टोंके दुःख आदि पहुंचानेसे दुःखित न होना। ९ असाधारणाध्याशय, अर्थात् सकल जीवोंको सुख पहुंचानेके लिये अतिपरिश्रम करना। १० उन्नताध्याशय, अर्थात् सर्वज्ञताकी प्राप्तिके लियेही इच्छा करना। ११ अर्पिताध्याशय, अर्थात् अपने सुखोंको छोडकर दूसरोंके लिये सुख प्राप्त कराना। १२ अनिवर्त्याध्याशय, अर्थात् अनेक विघ्नोंके होनेपरभी सर्वज्ञताकी प्राप्तिमें निश्चय रखना और उसके उपायको नहीं छोडना। १३ अकृत्रिमाध्याशय, अर्थात् सर्वज्ञताको छोडकर और सांसारिक पदार्थोंसे और साधारण श्रावकभूमिसे मनको हटाना, अथवा मनमें बनावट न रखना, पूरी सचाईसे वर्ताव करना। १४ शुद्धाध्याशय, अर्थात् अत्यन्त धर्ममें चित्त लगाना और सांसारिक पदार्थोंसे अत्यन्त विरक्त होना। १५ दृढाध्याशय, अर्थात् पूर्ण दृढता रखना और दुःखसे चलायमान नहीं होना। १६ स्वभावाध्याशय, अर्थात् उस दानको बुरा जानना जो अच्छे संकल्पसे न दिया जावे। १७ तृप्ताध्याशय, अर्थात् सांसारिक विषयोंसे मनको तृप्त रखना। १८ पुद्गलाध्याशय, अर्थात् अदृष्ट पदार्थोंको जाननेकी शक्तिको पानेके लिये लालसा होना अथवा आत्माको जाननेकी लालसा होना। १९ अनन्ताध्याशय, अर्थात् विना प्रत्युपकारकी इच्छाके सब जीवोंके साथ उपकार करना। २० सर्वज्ञताध्याशय, अर्थात् सर्वज्ञताकी प्राप्तिकी चाह होना ॥

करते २ सर्व पुण्यकर्म पूर्ण हो जाते हैं ॥ ८५ ॥ ध० ॥ अब आगे पारमिताके नामसे छः धर्मालोकमुख कहाते हैं। पारको पहुंची हुईका नाम पारमिता है। अत्यन्तका अर्थ लेना चाहिये। दानपारमिताका अर्थ वह दान है जिससे आगे दान न होवे अर्थात् सर्व वस्तुका दान कर देना। अन्न वस्तु धन और शरीरतकका दान देना दानपारिमता है। यह धर्मालोकमुख लक्षण अनुव्यंजन और बुद्धक्षेत्रकी पूरी शुद्धिको उत्पन्न करता है और मत्सरिसत्व अर्थात् कृपण दीन पुरुषोंका परिपाचन कराता है। कृपण पुरुष उसके अत्यन्त दानको देखकर भली प्रकार पक जाते हैं और उसका सा आचरण करने लग जाते हैं और दानपारमिताको प्राप्त हो जाते हैं। दानपारमितामें स्थित हो जानेसे पुरुषको पूर्ण शुद्धलक्षण और अनुव्यंजन प्राप्त होते हैं और शुद्धबुद्धक्षेत्र प्राप्त होता है। बुद्ध जिस पृथिवीपर उत्पन्न होता है उसको बुद्धक्षेत्र कहते हैं। उसके दानके प्रभावसे

ध०॥ दानपारमिता धर्मालोकमुखं लक्षणानुव्यंजनबुद्धक्षेत्रपरिशुद्ध्यै मत्सरिसत्व-परिपाचनतायै संवर्तते ॥ ८६ ॥

बुद्धक्षेत्रभी शुद्ध हो जाता है। और महापुरुषोंके लक्षण और अनुव्यंजन पूरे २ बुद्धके शरीरमें होते हैं। इन लक्षणों और अनुव्यंजनोंकी व्याख्या ललितविस्तरमें लिखी है॥ लक्षण बत्तीस गिनतीमें दिये हैं और अस्सी अनुव्यंजन दिये हैं। ललितविस्तरके सातवें अध्यायमें इनका वर्णन है। इनका यथाशक्य अनुवाद लिखते हैं॥ बुद्धभगवान् जब बालक शरीरमें थे तब एक महर्षि जिनका नाम असित था दर्शन करनेको आये हैं और बालकके शरीरको बत्तीस लक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनोंसे युक्त देखकर बालकके पिताके द्वारा पूंछे जानेपर उनका वर्णन महर्षिने इस प्रकार किया है॥ १ यह सर्वार्थसिद्ध कुमार (यह बुद्ध भगवान्का बालकपनका रखा हुआ नाम है) उष्णीषशीर्ष है। इसके शिरपर पगड़ीसी बंधी भासती है।

२ यह कुमार अभिन्नांजनमयूरकलापाभिनीलवेल्लितप्रदक्षिणावर्तकेश है। इसके केश न टूटे हुए अंजन (सुरमे) और मोरकी चोटीके समान काले हैं और घूंघरवाले हैं और प्रदक्षिणकी रीतिसे घूमे हुए हैं अर्थात् शिरकी प्रदक्षिणा करते हुए घूमे हुए हैं। ३ यह बालक समविपुलललाट है। इसका मस्तक सम और चौड़ा है। ४ इस बालककी भ्रुवोंके मध्यमें हिम और रजतके समान प्रकाशवाली ऊर्णा है। ५ यह बालक गोपक्ष्मनेत्राभिनीलनेत्र है। इस बालकके नेत्र गौकी आंखके पंख और आंखके समान काले हैं। ६ यह बालक समचत्वारिंशद्दन्त है। इस बालकके समान और चालीस दांत हैं। ७ यह बालक अविरलदन्त है। इस बालकके दांत पास २ जड़े हुयेसे हैं। ८ यह बालक शुक्लदन्त है। इस बालकके दांत शुक्ल अर्थात् श्वेत हैं। ९ यह बालक ब्रह्मस्वर है। इस बालकका स्वर ब्रह्माकासा है। १० यह बालक रसरसाग्रवान् है। यह बालक रसरसाग्रवाला है। ११ यह बालक प्रभूततनुजिह्व है। इस बालककी जीभ बड़ी और पतली है। १२ यह बालक सिंहहनु है। इस बालककी हनु सिंहकीसी है। कपोलके पासके भागको हनु कहते हैं। १३ यह बालक सुसंवृत्तस्कन्ध है। इस बालकके कन्धे बहुत गोल हैं। १४ यह बालक सप्तच्छदोच्छ्रितांस है। इस बालकके अंस सप्तच्छद वृक्षके समान ऊंचे हैं॥ (अमरकोशमें अंस स्कन्धका पर्यायवाचक दिया है)॥ १५ यह बालक सूक्ष्मसुवर्णवर्णच्छवि है। इस बालककी शोभा सूक्ष्म (पतले) सुवर्णके वर्णके समान है। १६ यह बालक स्थिर है। यह बालक अवनतप्रलम्बबाहु है। इस बालककी भुजा झुकी हुई और लम्बी हैं। १८ यह बालक सिंहपूर्वार्धकाय है। इस बालकका आगेका आधा शरीर सिंहके शरीरके समान सुडौल है। १९ यह बालक न्यग्रोधपरिमंडल है। इस बालकका शरीर वटके वृक्षके समान चारों ओरको मंडल बांधे हुआसा है। २० इस बालकका एक एक रोम

ऊर्ध्वग्राहि है और प्रदक्षिण रीतिसे झुका हुआ है। २१ यह बालक कोशोपगतवस्तिगुह्य है। इस बालकके वस्ति और गुह्य अंग कोशके उपगत हैं। २२ यह बालक सुविवर्तितोरु है। इस बालककी जांघें अच्छी प्रकारसे घूमी हुई हैं। २३ यह बालक ऐणेयमृगराजजंघ है। इस बालककी पिंडली एणमृग और सिंहकी पिंडलीके समान हैं। २४ यह बालक दीर्घांगुलि है। इस बालककी उंगली दीर्घ (लंबी) हैं। २५ यह बालक आयतपाणिपाद है इस बालकके हाथ और पैर चौडे हैं। २६ यह बालक मृदुतरुणहस्तपाद है। इस बालकके हाथ और पैर मृदु और तरुण हैं। २७ यह बालक जांगुलिकहस्तपाद है। विषकी चिकित्सा करनेवाले वैद्यका नाम जांगुलिक है। इस बालकके हाथ पैर विषके दूर करनेवाले हैं। २८ यह बालक दीर्घांगुलिधर है। इस बालकके हाथ लम्बे हैं। २९ इस बालकके पैरके तलुओंमें चक्र हैं। ३० उन चक्रोंमें प्रकाश बहुत है और श्वेत हैं। ३१ उनचक्रोंमें एक सहस्र अरे हैं और उनमें नाभिभी है। ३२ यह बालक सुप्रतिष्ठितसमपाद है। इस बालकके पैर अच्छे प्रतिष्ठित और सम हैं ॥ यह बत्तीस लक्षण समाप्त हुए॥ अब अस्सी अनुव्यंजन कहते हैं॥ १ यह बालक तुंगनख है। इस बालकके नख ऊंचे हैं। २ यह बालक ताम्रनख है। इस बालकके नख ताम्बेकेसे रंगके हैं। ३ यह बालक स्निग्धनख है। इस बालकके नख चिकने हैं। ४ यह बालक वृत्तांगुलि है। इस बालककी उंगली गोल हैं। ५ यह बालक अनुपूर्वचित्रांगुलि है। इस बालककी उंगली अनुपूर्व चित्र हैं, यथाक्रम विचित्र हैं। ६ यह बालक गूढशिर है। इस बालककी नसें गूढ हैं। ७ यह बालक गूढगुल्फ है। इस बालकके गुल्फ अर्थात् पैरके टकने गूढ हैं। ८ यह बालक घनसन्धि है इस बालककी सन्धि (जोड) घन (मिली हुई) हैं। ९ यह बालक अविषमसमपाद है। इस बालकके पैर विषम नहीं हैं किन्तु सम हैं। १० यह बालक आयतपाद-

पार्ष्णि है। इस बालकके पैर और एंडी चौडी चौडी हैं। ११ यह बालक स्निग्धपाणिलेख है। इस बालकके हाथकी लकीरें चिकनी हैं। १२ यह बालक तुल्यपाणिलेख है। इस बालकके दोनों हाथोंमें बराबर रेखा हैं। १३ यह बालक गंभीरपाणिलेख है। इस बालकके हाथकी रेखा गंभीर हैं। १४ यह बालक अजिह्मपाणिलेख है। इस बालकके हाथोंमें रेखा टेढ़ी नहीं है। १५ यह बालक अनुपूर्वपाणिलेख है। इस बालकके हाथोंकी रेखा यथाक्रमसे हैं। १६ यह बालक बिम्बोष्ठ है। इस बालकके ओष्ठ बिम्बफलके समान रक्त हैं। १७ यह बालक अनुच्चशब्दवचन है। इस बालकका शब्द और वचन उच्च नहीं है। १८ यह बालक मृदुतरुणताम्रजिह्व है। इस बालककी जीभ मृदु तरुण और ताम्रवर्ण है। १९ यह बालक गजगर्जिताभिस्तनितमेघस्वरमधुरमंजुघोष है। इस बालकका हाथीकी गर्ज और मेघकी गर्जके समान स्वर और मधुर और मंजु है। २० यह बालक परिपूर्णव्यंजन है। इस बालकके चिह्न पूरे २ पूर्ण हैं। २१ यह बालक प्रलम्बबाहु है। इस बालककी भुजा लम्बी हैं। २२ यह बालक शुचिगात्रवस्तुसंपन्न है। इस बालकके सब गात्र और वस्तु पवित्र हैं। २३ यह बालक मृदुगात्र है। इस बालकके अंग मृदु हैं। २४ यह बालक विशालगात्र है। इस बालकके अंग विशाल हैं। २५ यह बालक अदीनगात्र है। इस बालकके अंग दीन नहीं हैं। २६ यह बालक अपूर्वगात्र है। इस बालकके अंग अपूर्व अर्थात् विलक्षण हैं। २७ यह बालक सुसमाहितगात्र है। इस बालकके अंग अच्छी प्रकार समाहित अर्थात् शान्त हैं। २८ यह बालक सुविभक्तगात्र है। इस बालकके गात्र अच्छी प्रकार योग्यताके साथ विभक्त हैं। २९ यह बालक पृथुविपुलसुपरिपूर्णजानुमंडल है। इस बालकके जानुमंडल (परिया) बहुत विपुल और सुपरिपूर्ण हैं। ३० यह बालक वृत्तगात्र है। इस बालकके अंग वृत्त हैं।

३१ यह बालक सुपरिमृष्टगात्र है। इस बालकके अंग बहुत शुद्ध हैं। ३२ यह बालक अजिह्मगात्र है। इस बालकके अंग वक्र नहीं हैं। ३३ यह बालक अनुपूर्वगात्र है। इस बालकके अंग अनुपूर्व (योग्य) हैं। ३४ यह बालक गंभीरनाभि है। इस बालककी नाभि गंभीर है। ३५ यह बालक अजिह्मनाभि है। इस बालककी नाभि अजिह्म है। ३६ यह बालक अनुपूर्वनाभि है। इस बालककी नाभि अनुपूर्व है। ३७ यह बालक शुच्याचार है। इस बालकका आचार शुचि (पवित्र) है। ३८ यह बालक ऋषभवत् संमत्तप्रासादिक है। यह बालक बैलके समान संमत्त और प्रसन्नतायुक्त और दर्शनीय है। ३९ यह बालक परमसुविशुद्धवितिमिरालोकसमप्रभ है। इस बालककी प्रभा परम शुद्ध सात्विक पुरुषके प्रकाशके समान है। ४० यह बालक नागविलम्बितगति है। इस बालककी चाल हाथीकी मंदगतिके समान है। ४१ यह बालक सिंहविक्रान्तगति है। इस बालककी चाल सिंहकी विक्रान्त गतिके समान है। ४२ यह बालक ऋषभविक्रान्तगति है। इस बालककी गति सांडकी विक्रान्तगतिके समान है। ४३ यह बालक हंसविक्रान्तगति है। इस बालककी गति हंसकी विक्रान्तगतिके समान है। ४४ यह बालक अभिप्रदक्षिणावर्तगति है। इस बालककी गति प्रदक्षिणको आवर्त किये हुये है। ४५ यह बालक वृत्तकुक्षि है। इस बालककी कुक्षि (कोख) वृत्त (गोल) है। ४६ यह बालक अजिह्मकुक्षि है। इस बालककी कुक्षि अजिह्म है। ४७ यह बालक चापोदर है। इस बालकका उदर धनुषके समान पतला है। ४८ यह बालक व्यपगतछिद्रदोषनीलकाष्ठशरीर है। इस बालकके शरीरमें छिद्र और दोष नहीं हैं और नीलके वृक्षके समान पतला सीधा शरीर है। ४९ यह बालक वृत्तदंष्ट्र है। इस बालककी डाढ़ें गोल हैं। ५० यह बालक तीक्ष्णदन्त है। इस बालकके दांत तीक्ष्ण हैं। ५१ यह बालक अनुपूर्वदंष्ट्र है। इस बालककी दंष्ट्रा (डाढ) अनुपूर्व हैं।

५२ यह बालक तुंगनास है। इस बालककी नाक ऊंची है। ५३ यह बालक शुचिनयन है। इस बालकके नेत्र पवित्र हैं। ५४ यह बालक विमलनयन है। इस बालकके नेत्र निर्मल हैं। ५५ यह बालक प्रहसित-नयन है। इस बालकके नेत्र हंसतेसे हैं। ५६ यह बालक आयतनयन है। इस बालकके नेत्र चौड़े हैं। ५७ यह बालक विशालनयन है। इस बालकके नेत्र विशाल हैं। ५८ यह बालक नीलकुवलयदलसदृश-नयन है। इस बालकके नेत्र नीले कमलके पुष्पके पत्तेके समान हैं। ५९ यह बालक संहितभ्रू है। इस बालककी भ्रुवें मिली हुई हैं। ६० यह बालक चित्रभ्रू है। इस बालककी भ्रुवें (भौं) विचित्र हैं। ६१ यह बालक संगतभ्रू है। इस बालककी भ्रुवें संगत हैं। ६२ यह बालक अनुपूर्वभ्रू है। इस बालककी भ्रुवें अनुपूर्व हैं। ६३ यह बालक असितभ्रू है। इस बालककी भौं काली हैं। ६४ यह बालक पीनगंड हैं। इस बालकके कपोल मोटे हैं। ६५ यह बालक अविषमगंड है। इस बालकके कपोल विषम नहीं हैं समान हैं। ६६ यह बालक व्यपगतगण्डदोष है। इस बालकके कपोलोंमें कोई दोष नहीं हैं। ६७ यह बालक अनुपहतकूर्च है। इस बालकका कूर्च (भौंओंका मध्यभाग) उपहत नहीं है। ६८ यह बालक सुविदितेन्द्रिय है। इस बालककी इन्द्रियां सुविदित हैं। ६९ यह बालक सुपरिपूर्णेन्द्रिय है। इस बालक-की इन्द्रियां सुपरिपूर्ण हैं। ७० यह बालक संगतमुखललाट है। इस बालकका मुख और मस्तक संगत (योग्य) है। ७१ यह बालक परिपूर्णोत्तमांग है। इस बालकका शिर परिपूर्ण है। ७२ यह बालक असितकेश है। इस बालकके बाल काले हैं। ७३ यह बालक संहितकेश हैं। इस बालकके बाल पास २ हैं। ७४ यह बालक सुसंगतकेश है। इस बालकके केश सुसंगत हैं। ७५ यह बालक सुरभिकेश है। इस बालकके बालोंमें सुगन्धि है। ७६ यह बालक अपरुषकेश है। इस बालकके बाल मृदु हैं।

७७ यह बालक अनाकुलकेश है। इस बालकके बाल बिखरे हुए नहीं हैं। ७८ यह बालक अनुपूर्वकेश है। इस बालकके बाल अनुपूर्व हैं। ७९ यह बालक संकुचितकेश है। इस बालकके बाल संकुचित (घुंघरीले) हैं। ८० यह बालक श्रीवत्सस्वस्तिकनन्द्यावर्तवर्धमानसंस्थानकेश है। इस बालकके बाल श्रीवत्स (विष्णुके हृदयका चिह्न), स्वस्तिक, नन्द्यावर्त और वर्धमानके आकारके समान हैं॥ यह लक्षणों और अनुव्यंजनोंकी व्याख्या समाप्त हुई॥ ८६ ॥ ध० ॥ सब जीवोंसे समान प्रीति करनेका नाम शील है। शीलपारमिता धर्मालोकमुख है और सब क्षणके अपायोंका नाश करता है और दुष्ट शीलवाले जीवोंका भलीप्रकार पाचन करता है। जब किसी व्यापारमें चित्त स्थित न होवे किन्तु निर्व्यापार शुद्ध स्वरूपमें

ध०॥ शीलपारमिता धर्मालोकमुखं सर्वक्षणापायसमतिक्रमाय दुःशीलसत्वपरिपाचनतायै संवर्तते ॥ ८७ ॥

ध०॥ क्षान्तिपारमिता धर्मालोकमुखं सर्वव्यापादाखिलदोषमानमददर्पप्रहाणाय व्यापन्नचित्तसत्वपरिपाचनतायै संवर्तते ॥ ८८ ॥

चित्त एकाग्र होवे तो ऐसी स्थितिको क्षण कहते हैं। ऐसी निर्व्यापार स्थितिके बाधक जो अपाय हैं वह शीलके अभ्याससे नष्ट हो जाते हैं। और दुष्ट शीलवाले पुरुष उसके अत्यन्त शीलको देखकरभी पक जाते हैं अपने दुष्टशीलस्वभावको छोड देते हैं और शुद्धशीलमें स्थित हो जाते हैं॥ ८७ ॥ ध० ॥ यदि दूसरा पुरुष कोई अपराध करे तो उसके अपराधोंको क्षमा करना क्षान्ति कहाती है (अत्यन्त क्षान्तिका नाम क्षान्तिपारमिता है) यह धर्मालोकमुख सर्व व्यापाद अर्थात् मनके द्रोहोंको और सब दोष मान मद दर्पको नाश करता है। और उन पुरुषोंका परिपाचन करता है जिनके चित्तमें व्यापाद अर्थात् द्रोह भरा हुआ है।

क्षान्तिका आश्रय कर लेनेसे और क्षान्तिको चित्तमें वसा लेनेसे चित्तके द्रोह राग द्वेष मोह मान मद अहंकार सब नष्ट हो जाते हैं और द्रोहचित्तवाले पुरुषभी उसकी क्षान्तिको देखकर अपने द्रोहभावको छोड देते हैं और क्षान्तिमें स्थित होने लगते हैं। दूसरे पुरुषोंके अपराधोंको सहना और उनसे द्रोह न करना यह क्षान्तिका फल है। मनका द्रोह निकल जानेसे मन शीघ्र शुद्ध हो जाता है ॥ ८८ ॥ ध०॥ वीर्यका अर्थ उत्साहपूर्वक पुरुषार्थ और उद्योग है। अत्यन्त वीर्यका नाम वीर्यपारमिता है। यह धर्मालोकमुख सब कुशल मूल अर्थात् पुण्यकर्मोंके धर्मरूप उदार प्रकाशको उतारता है और आलस्यमें पडे हुए और संसारकी इच्छामें फंसे हुए जीवोंका परिपाचन करता है। सर्व कुशल मूल पुण्य कर्मका पूर्ण होना और

ध०॥ वीर्यपारमिता धर्मालोकमुखं सर्वकुशलमूलधर्मालोकमुखोत्तारणाय कुसीदसत्वपरिपाचनतायै संवर्तते ॥ ८९ ॥

ध०॥ ध्यानपारमिता धर्मालोकमुखं सर्वज्ञानाभिज्ञोत्पादाय विक्षिप्तचित्तसत्वपरिपाचनतायै संवर्तते ॥ ९० ॥

उसका उदार प्रकाश होना वीर्यके होनेसे होता है। और संसारकी इच्छाओंमें फंसे हुए कुसीद जीवभी उसके वीर्यको देखकर उद्योगी और पुरुषार्थी बनकर धर्ममें प्रवृत्त होते हैं ॥ ८९ ॥ ध० ॥ ध्यानका अर्थ पीछे लिख चुके हैं। ध्यानपारमिता धर्मालोकमुख सर्वज्ञान और अभिज्ञाको उत्पन्न करता है और विक्षिप्त चित्तवाले जीवोंका परिपाचन करता है। ध्यानका अभ्यास करनेसे सर्व वस्तुका ज्ञान और सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अभिज्ञाका अर्थ सिद्धि है। विक्षिप्तचित्तवाले जीव ध्यानीकी ध्यानकी अवस्था देखकर भली प्रकार पक जाते हैं अर्थात् निश्चितचित्त हो जाते हैं और निश्चितचित्त होकर ध्यानका अभ्यास

करते हैं॥ ललितविस्तरमें चार ध्यान लिखे हैं जिनको बुद्ध भगवान्ने मारको परास्त करके लगायाँ है। उनको यहांभी लिखते हैं। देखो ललितविस्तर बाईस अध्याय ॥ बुद्धभगवान् अपना जीवनचरित भिक्षुकोंको सुनाते समय संबोधन करते हैं कि हे भिक्षुको ! बोधिसत्त्वने अपने ध्यानके विरोधी मारको मारकर कंटक अर्थात् ध्यानके विरोधी सब वृत्तिरूप कांटोंको मलकर युद्धभूमिमें विजयको पाकर धर्मकी ध्वजाको

ल०॥ इति हि भिक्षवो बोधिसत्त्वो निहतमारप्रत्यर्थिको मर्दितकण्टको रणशिरसि विजितविजय उच्छ्रितछत्रध्वजपताको विविक्तं कामैर्विविक्तं पापकैरकुशलैर्धर्मैः सवितर्कं सविचारं विवेकजं प्रीतिसुखं प्रथमं ध्यानमुपसंपद्य विहरति स्म ॥ सवितर्कसविचाराणां व्युपशमादध्यात्मसंप्रसादाच्चेतस एकोतिभावादवितर्कमविचारं समाधिजं प्रीतिसुखं द्वितीयं ध्यानमुपसंपद्य विहरति स्म ॥ स प्रीतिविरागादुपेक्षको विहरन् स्मृतिमान् संप्रजानन् सुखं कायेन प्रतिसंवेदयति स्म यत्तदार्या आचक्षते स्मोपेक्षकः स्मृतिमान् सुखविहारी निष्प्रीतिकं तृतीयं ध्यानमुपसंपद्य विहरति स्म ॥ स सुखस्य च प्रहाणाद्दुःखस्य च प्रहाणात् पूर्वमेव च सौमनस्यदौर्मनस्ययोरस्तंगमाददुःखासुखमुपेक्षास्मृतिविशुद्धं चतुर्थं ध्यानमुपसंपद्य विहरति स्म ॥

खडा करके सब कामनाओंसे रहित और सब अधर्म और पापके संकल्पोंसे रहित विवेकसे उत्पन्न प्रीतिरूप सुखवाले सवितर्क और सविचार पहले ध्यानको प्राप्त होकर विहार किया। सवितर्क सविचार निर्वितर्क और निर्विचारका अर्थ समापत्तिके विषयमें लिख चुके हैं॥ सवितर्क और सविचारकेभी शान्त हो जानेपर अध्यात्म चित्त और बुद्धिके शुद्ध होनेपर एक स्वरूपमें स्थित होनेसे समाधिसे उत्पन्न हुए २ प्रीतिरूप

सुखवाले निर्वितर्क और निर्विचार दूसरे ध्यानको प्राप्त होकर विहार किया ॥ फिर प्रीतिसेभी राग निवृत्त हो जानेसे उपेक्षायुक्त विहार करते हुए स्मृतिमान् और संप्रज्ञात समाधिमें स्थित उसने सुखको शरीरसे अनुभव किया और जैसा कि श्रेष्ठपुरुष कहते हैं उसी प्रकार उपेक्षक स्मृतिमान् सुखविहारी होकर निष्प्रीतिक तीसरे ध्यानको प्राप्त होकर विहार किया ॥ फिर सुखके नाश हो जानेसे और दुःखकाभी नाश हो जानेसे सौमनस्य और दौर्मनस्यके तो पहलेही नाश हो जानेसे दुःख और सुखसे रहित उपेक्षा और स्मृतिसे शुद्ध चौथे ध्यानको प्राप्त होकर विहार किया । यह चौथा ध्यान असंप्रज्ञात समाधिका स्वरूप है ॥ पहले ध्यानमें सवितर्क और सविचार समापत्तियुक्त विवेकज प्रीति सुखका भास होता है । दूसरे ध्यानमें निर्वितर्क और निर्विचार समापत्तियुक्त समाधिज प्रीति सुखका भास होता है । तीसरे ध्यानमें संप्रज्ञात समाधियुक्त

ध०॥ प्रज्ञापारमिता धर्मालोकमुखमविद्यामोहतमोऽन्धकारोपलम्भदृष्टिप्रहाणाय दुष्प्रज्ञसत्वपरिपाचनतायै संवर्तते ॥ ९१ ॥

प्रीतिसे रहित सुखका भास होता है । चौथे ध्यानमें असंप्रज्ञात समाधिसे युक्त उपेक्षा और स्मृतिकी विशुद्धिसहित सुख और दुःख दोनोंके अभावका भास होता है॥९०॥ध०॥ प्रज्ञाका अर्थ पीछे लिख चुके हैं। प्रज्ञापारमिताके दो अर्थ हैं एक तो सर्वज्ञता और दूसरे चित्तकी शून्यता है। इन दोनोंका संग है। जब चित्त वृत्तियोंसे शून्य होता है तवही सर्वज्ञताका भास होता है। जब सर्वज्ञता होती है तो चित्तभी अवश्य वृत्तियोंसे शून्य होता है। सर्वज्ञता धर्मालोकमुख अविद्या, मोह, तमोऽन्धकार और उपलम्भ दृष्टिको नाश करता है और हीनप्रज्ञावाले जीवोंकी परिपाचनताको उत्पन्न करता है। सर्वज्ञताको पाकर अविद्या मोह और तमोगुणका पूरा २ नाश हो जाता है। और उपलम्भ दृष्टिकाभी नाश हो जाता है। उपलम्भदृष्टि उसको

कहते हैं जिसमें अपने वा संसारविषयके संकल्प रहते हैं। वह संकल्पभी शून्यताके बाधक हैं इसलिये उनकोभी दूर करना पडता है विना सब संकल्पोंको दूर किये निर्विकल्पताका भास नहीं होता है। हीन-प्रज्ञावाले जीवभी उसकी प्रज्ञापारमिताको देखकर थक जाते हैं और प्रज्ञापारमिताको पानेके लिये पुरुपार्थ करते हैं ॥ ९१ ॥ ध० ॥ उपायमें कुशल होनेका नाम उपायकौशल है। यह धर्मालोकमुख भली प्रकार अधिमुक्त अर्थात् संदेहरहित सर्वज्ञताकी प्राप्तिके विषयमें श्रद्धालु जीवोंको उपायके मार्गको दिखानेमें प्रवृत्त करता है और सब बुद्धधर्मोंकी पूरी २ प्राप्तिको उत्पन्न करता है। उपायकी कुशलता जिस पुरुष-को आ जाती है वह पुरुष दूसरोंकोभी भली प्रकार उपायके मार्गको दिखा देता है। और उपायमें कुशल

ध०॥ **उपायकौशलं धर्मालोकमुखं यथाधिमुक्तसत्वोपायपथसन्दर्शनाय सर्वबुद्धधर्मा-विधमनतायै संवर्तते ॥ ९२ ॥ चत्वारि संग्रहवस्तूनि धर्मालोकमुखं सत्वसंग्रहाय संबोधिप्राप्तेश्च धर्मसंप्रत्यवेक्षणतायै संवर्तते ॥ ९३ ॥**

होनेके कारण अवश्य सर्वज्ञताको प्राप्त हो जाता है। अकेले मुक्त होनेकी इच्छा जीमें कभीभी न करना और सब संसारी जीवोंकी मुक्तिके प्रणिधानको मनसे न निकालना और शून्यता समाधिमें चरते हुएभी जगत्के हितको न भूलना और कितनाभी काल लगे बुद्ध भूमिको पाये विना मुक्त न होना यह सब उपायकौशल कहाता है। इसका वर्णन एक अध्यायमें अष्टसाहस्रिकामें लिखा है और अन्य धर्मालो-कमुखोंकाभी वर्णन अष्टसाहस्रिकामें विस्तारसे कहा हुआ है। उन सबको विस्तारके कारण यहां नहीं लिख सकते हैं ॥ ९२ ॥ ध० ॥ दान देना, प्रियवचन बोलना, अर्थक्रिया अर्थात् धर्मका आचरण करना और समानार्थता अर्थात् सब जीवोंका समान अर्थ जानना यह चार संग्रहवस्तु कहाती हैं। इन

चारोंका नाम धर्मालोकमुख है। यह धर्मालोकमुख अनेक जीवोंके संग्रहको उत्पन्न करता है। जो पुरुष दान देता है और मधुर वचन बोलता है उसके अनेक प्राणी सहायक हो जाते हैं और उसके उपदेश किये हुए धर्मको सुनते हैं। और इस धर्मालोकमुखसे सर्वज्ञताकी प्राप्तिके साधनकाभी प्रत्यवेक्षण प्राप्त हो जाता है ॥ ९३ ॥ ध० ॥ धार्मिक पुरुषोंके धर्मके आचरणको देखकर जो दूसरे प्राणीभी धर्मका आचरण करते हैं वह यह दूसरे प्राणियोंका सुधरना सत्वपरिपाक कहाता है। इस धर्मालोकमुखसे अनात्मवस्तु संसारके

ध० ॥ सत्वपरिपाको धर्मालोकमुखमनात्मसुखानध्यवसानाय परिखेदतायै संवर्तते ॥९४॥

ध० ॥ सद्धर्मपरिग्रहो धर्मालोकमुखं सर्वसत्वसंक्लेशप्रहाणाय संवर्तते ॥ ९५ ॥

ध० ॥ पुण्यसंभारो धर्मालोकमुखं सर्वसत्वोपजीव्यतायै संवर्तते ॥ ९६ ॥

सुखोंकी ओरसे सुखबुद्धिकी निवृत्ति हो जाती है और उन संसारके सुखोंमें दुःखबुद्धि उत्पन्न होती है। यदि संसारके सुख होते तो अन्य जीव क्यों उनको त्यागते इसी प्रकारके विचार आदिसे उनमें दुःखका भास होने लगता है ॥ ९४ ॥ ध० ॥ सत्यधर्म, योगधर्म, सर्वज्ञताधर्मका परिग्रह करना सद्धर्मपरिग्रह कहाता है। यह धर्मालोकमुख सर्व जीवोंके सब क्लेशोंकी निवृत्तिको उत्पन्न करता है। सर्वज्ञताको पाकर पुरुष सर्व जीवोंको सुख देनेवाले सर्वज्ञताधर्मका उपदेश अन्य साधारण जीवोंकोभी करता है जिस उपदेशको सुनकर जीवोंके सब क्लेश मिट जाते हैं ॥ ९५ ॥ ध० ॥ अब चार संभारोंकी चर्चा है। सामग्रीका नाम

१ ललितविस्तरमें आठ संभार इस प्रकार लिखे हैं। १ दानसंभार, अर्थात् दान देनेके पुण्यको इकट्ठा करना। २ शीलसंभार, अर्थात् सब प्रकारसे सब जीवोंसे कल्याणभाव चित्तमें रखना। ३ श्रुतसंभार, अर्थात् धर्म और विद्याको श्रवण करके संचय करना। ४ शमथसंभार, अर्थात् शान्तिरूप सामग्री एकट्ठी करना शान्तिको बढाना।

संभार है। पुण्यका अधिक इकट्ठा हो जाना पुण्यसंभार कहाता है। यह धर्मालोकमुख सर्व जीवोंको उस पुण्यके द्वारा लाभ पहुंचाता है इसलिये सब जीव उसके उपजीव्य अर्थात् सहायक हो जाते हैं। पुण्यको इकट्ठा करना चाहिये बहुत कालतक पुण्यका आचरण करनेसे पुण्यका संभार इकट्ठा हो जाता है। ॥ ९६ ॥ ध० ॥ ज्ञानका संभार जब इकट्ठा हो जाता है तब इस धर्मालोकमुखसे दश बलोंकी पूर्णता प्राप्त हो जाती है ॥ कोई ऐसा कहते हैं कि दान शील क्षान्ति वीर्य ध्यान प्रज्ञा बल उपाय प्रणिधि और ज्ञान यह दश बुद्धके बल हैं किन्तु ललितविस्तरके छब्बीसवें अध्यायमें बुद्धके गुणोंको वर्णन करनेके प्रसंगमें दश बलोंका लक्षण इस प्रकार प्रतीत होता है। १ बुद्धको स्थानास्थानज्ञानबलोपेत कहते हैं

ध०॥ **ज्ञानसंभारो धर्मालोकमुखं दशबलप्रतिपूर्त्यै संवर्तते ॥ ९७ ॥**

अर्थात् योग्य और अयोग्य, सद् और असद् वस्तुके ज्ञानरूपी बलसे युक्त कहते हैं। योग्य और अयोग्य वस्तुके ज्ञानमें बुद्ध कुशल होता है और हीन और प्रादेशिक ज्ञानसे रहित होता है। श्रावक और प्रत्येक-बुद्धभूमिको हीनयान कहते हैं। श्रावक और प्रत्येकबुद्धके स्वार्थपरायण हीनज्ञानसे बुद्ध रहित होता है। अल्पज्ञानका नाम प्रादेशिक ज्ञान है, इस अल्पज्ञानसेभी बुद्ध रहित होता है क्यों कि उसमें सर्वज्ञता होती है। महायानके गुणोंके उपदेश करनेका बल बुद्धमें होता है। बुद्धभूमिका नाम महायान है। इस प्रकार योग्य अयोग्य वस्तु आदिके ज्ञान होनेके कारण बुद्धको स्थानास्थानज्ञानबलोपेत कहते हैं। यह पहला बल

---

५ विदर्शनासंभार, अर्थात् विशिष्ट दर्शन अर्थात् उत्तम ज्ञानको इकट्ठा करना। ६ पुण्यसंभार, अर्थात् पुण्य-कर्मोंका आचरण करनेके द्वारा पुण्यका संचय करना। ७ ज्ञानसंभार, अर्थात् नाना प्रकारके ज्ञानको इकट्ठा करना। ८ महाकरुणासंभार, अर्थात् अत्यन्त दयाका संचय करना, सब जीवोंको मुक्ति मिल जावे ऐसी करुणाको मनमें बसाना ॥

हुआ ॥ २ बुद्धको अतीतानागतप्रत्युत्पन्नसर्वकर्मसमादानहेतुविपाकज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। बुद्धको भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालका ज्ञान होता है। और सब कर्मोंकी उत्पत्ति और उन कर्मोंके हेतु और उन कर्मोंके फलका ज्ञान यथावत् बुद्धको होता है। यह दूसरा बल हुआ ॥ ३ बुद्धको सर्वसत्त्वेन्द्रियवीर्यविमात्रताज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। बुद्धको सर्व चित्त और इन्द्रियोंकी शक्ति और गतिका ज्ञान होता है। यह तीसरा बल हुआ ॥ ४ बुद्धको अनेकधातुनानालोकधातुप्रवेशज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। बुद्धको पृथिवी आदि सब तत्वोंमें और सब लोकोंमें प्रवेश करनेका ज्ञान होता है अर्थात् बुद्ध सब तत्वोंमें और सब लोकोंमें प्रवेश करना जानता है। यह चौथा बल हुआ ॥ ५ बुद्धको अनेकाधिमुक्तिनानाधिमुक्तिसर्वनिरवशेषाधिमुक्तिविमुक्तिज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। बुद्धको अनेक और सब अधिमुक्ति और विमुक्तिका ज्ञान होता है। संदेहरहित श्रद्धायुक्त चित्तकी दशाका नाम अधिमुक्ति है। और वासना आदिसे रहित चित्तकी दशाका नाम विमुक्ति है। यह पांचवां बल हुआ ॥ ६ बुद्धको सर्वत्रगामिनीप्रतिपज्ज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। सब अविद्या आदि दुःखोंसे बचानेका उपाय बतानेवाली बुद्धिका ज्ञान बुद्धको होता है। यह छठा बल हुआ। ७ बुद्धको सर्वध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तिसंक्लेशव्यवदानव्यवस्थापनज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। बुद्धको सब चार ध्यानोंका ज्ञान होता है। और विमोक्ष समाधि और समापत्तिका ज्ञान होता है। इनका लक्षण समाधिकी व्याख्यामें लिख चुके हैं। बुद्धको सब क्लेश और क्लेशोंकी निवृत्तिका ज्ञान होता है। यह सातवां बल हुआ ॥ ८ बुद्धको अनेकविधपूर्वनिवासानुस्मृत्यसंगज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। बुद्धको असंख्यात पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त स्मर

ज्ञान रागद्वेषरहित होता है। अपने और सकल जीवोंके पूर्व जन्मोंके वृत्तान्तको जानता हुआ राग द्वेषके संगसे रहित होता है। यह आठवां बल हुआ ॥ ९ बुद्धको निरवशेषसर्वरूपावरणदर्शनदिव्यचक्षुर्ज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। सब प्रकारके आवरणोंसे रहित सब ब्रह्माण्डको देखनेका दिव्यचक्षुःका ज्ञान बुद्धको होता है। अर्थात् बुद्ध अपने दिव्य नेत्रसे सब ब्रह्माण्डको यथावत् देखता है। यह नवां बल हुआ ॥ १० बुद्धको सर्ववासनानुसन्धिगतनिरवशेषसर्वाश्रवक्षयज्ञानबलोपेत कहते हैं। इसका अर्थ यह है। चित्तकी सब वासनाओंके क्षीण हो जानेपर परममोक्षके साक्षात्कारका ज्ञान बुद्धको होता है अर्थात् बुद्ध सर्वज्ञताको पाकर मोक्षका साक्षात्कार कर वासनाकी निवृत्तिमें स्थित होकर सब कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह दशवां बल हुआ ॥ यह बुद्धमें दश बल होते हैं इसलिये बुद्धको दशतथागत-

ध०॥ **शमथसंभारो धर्मालोकमुखं तथागतसमाधिप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ ९८ ॥**

ध०॥ **विदर्शनासंभारो धर्मालोकमुखं प्रज्ञाचक्षुःप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ ९९ ॥**

बलोपेत कहते हैं ॥ ९७ ॥ ध० ॥ चित्तकी शान्तिका नाम शमथ है। जब शान्तिका संभार इकट्ठा हो जाता है तो तथागतकी समाधिका लाभ होता है। सत्यका नाम तथा है, ज्ञातका नाम गत है पूर्णरीतिसे जिसको सत्य ज्ञात हो गया है उसको तथागत कहते हैं। सर्वज्ञ योगीका नाम तथागत है उसीको बुद्ध कहते हैं। तथागत बुद्ध सर्वज्ञ योगी जिस समाधिमें विहार करता है उसका नाम तथागतसमाधि है ॥ ॥ ९८ ॥ ध०॥ विशेष दर्शनका नाम विदर्शना है। इस धर्मालोकमुखसे प्रज्ञाचक्षुःका लाभ प्राप्त होता है ॥ पांचचक्षुः अर्थात् ज्ञानकी भूमि कहाती हैं। मांसचक्षुः,धर्मचक्षुः,प्रज्ञाचक्षुः,दिव्यचक्षुः और सर्वज्ञताचक्षुः। साधारण पुरुषको जितना ज्ञान मांसकी इन्द्रियोंसे होता है उतने ज्ञानको मांसचक्षुः कहते हैं। धर्मका

आचरण करनेसे धार्मिक पुरुषको जितना ज्ञान धर्म अधर्म आदि विषयमें उत्पन्न हो जाता है उसको धर्मचक्षुः कहते हैं। प्रज्ञासे जो अदृष्ट पदार्थोंका बोध होता है उसको प्रज्ञाचक्षुः कहते हैं। देवोंके समान चक्षुःको दिव्यचक्षुः कहते हैं। सर्वज्ञताको पा लेनेसे जो ज्ञान होता है उसको सर्वज्ञताचक्षुः कहते हैं। सर्वज्ञताचक्षुः ज्ञानकी परमकाष्ठा है। इससे आगे और ज्ञान नहीं हैं॥ जब पुरुषको विशेष दर्शन प्राप्त हो

ध०॥ प्रतिसंविद्वतारो धर्मालोकमुखं धर्मचक्षुःप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ १०० ॥

जाता है तो प्रज्ञाका प्रकाश खुल जाता है। पदार्थोंके यथावत् जानने और देखनेको विशेष दर्शन कहते हैं ॥ ९९ ॥ ध० ॥ प्रतिसंवित्का अर्थ बुद्धि है। अवतारका अर्थ उतरना है। यहांपर अर्थ यह हुआ कि बुद्धिमें उतरना अथवा बुद्धिका उतरना अर्थात् बुद्धिकी प्राप्ति होना। सत् असत्को जाननेकी शक्तिका नाम बुद्धि है। और पीछे समाधिकी व्याख्यामें विषयवती प्रवृत्तियोंको कह चुके हैं। उनकोभी प्रतिसंवित् कहते हैं। इस बुद्धिकी प्राप्तिसे धर्मचक्षुःकी प्राप्ति हो जाती है। बुद्धिको पाकर पुरुष धर्मका आचरण

---

१ ज्ञानकी पांच भूमि हैं और उनको पंचचक्षुःके नामसे कहते हैं। मांसचक्षुः, धर्मचक्षुः, प्रज्ञाचक्षुः, दिव्यचक्षुः और बुद्धचक्षुः अर्थात् सर्वज्ञताचक्षुः। मांसचक्षुः प्रकाशकी सहायतासे देख सकती है। और इस चक्षुःका बहिर्वस्तुज्ञान अत्यन्त अल्प और परिमित ज्ञान होता है। धार्मिक पुरुषकी चक्षुःको धर्मचक्षुः कहते हैं। यह चक्षुः धर्मका आचरण करनेसे प्राप्त होती है। इस धर्मचक्षुःसे दश प्रकारकी ज्ञानशक्ति हो जाती है। १ विचारशक्ति। २ भिन्न २ मनुष्योंकी बुद्धिको विचारनेकी शक्ति। ३ मोक्ष पानेके भिन्न २ मुख्य साधनोंको जाननेकी शक्ति। ४ सब पुरुषोंके आचार आदिको जाननेकी शक्ति। ५ पुण्यकर्म और पापकर्मोंके फलको जाननेकी शक्ति। ६ सांसारिक दुःखोंको दूर करनेकी शक्ति। ७ ध्यानकी उत्तमताको जाननेकी शक्ति। ८ पूर्वजन्मोंके वृत्तान्त स्मरण हो आनेकी शक्ति। ९ धर्मचक्षुःकी शुद्धि। १० दुःखोंकी निवृत्ति। सिद्ध पुरुषोंको प्रज्ञाचक्षुः प्राप्त हो जाती है।

करता है। और धर्मका आचरण करनेसे धर्मचक्षुःको पा लेता है ॥ १०० ॥ ध० ॥ परिसरणका अर्थ शुद्ध सत्यबुद्धि है। सर्वज्ञता विषयकी बुद्धिको सत्यबुद्धि कहते हैं। ऐसी बुद्धिकी प्राप्तिसे बुद्धचक्षुःकी पूरी २ शुद्धि हो जाती है। सर्वज्ञताके विषयकी बुद्धि उत्पन्न होनेसे बुद्धचक्षुः शुद्ध हो जाती है ॥ १०१ ॥ ध० ॥

ध०॥ परिसरणावतारो धर्मालोकमुखं बुद्धचक्षुःपरिशुद्धयै संवर्तते ॥ १०१ ॥

ध०॥ धारणाप्रतिलम्भो धर्मालोकमुखं सर्वबुद्धभाषिताधारणतायै संवर्तते ॥१०२ ॥

धारण करने और स्मरण रखनेकी शक्तिका नाम धारणा है। धारणाकी प्राप्ति हो जानेसे पुरुष सब बुद्ध पुरुषके उपदेश किये हुए वचनोंको धारण कर सकता और स्मरण रख सकता है धर्मके सब वचनोंको जब पुरुष स्मरण रखता है तब उनके अनुकूल आचरण करनेमें प्रवृत्त होता है इसलिये धारणाका लाभ धर्मका

प्रज्ञाचक्षुःसे अदृष्टविषयोंका बोध होता है ॥ योगियोंको दिव्यचक्षुः प्राप्त हो जाती है और इस चक्षुःकी प्राप्ति हो जानेपर अष्टसिद्धि और नाना सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं ॥ सर्वज्ञ योगीको बुद्धचक्षुः प्राप्त हो जाती है। बुद्धचक्षुःसे सब प्रकारका पूर्ण बोध होता है। वह इस प्रकार अठारह प्रकारका वर्णन किया गया है। १ वर्तमान कालका पूर्ण बोध। २ भूतकालका पूर्ण बोध। ३ भविष्यत् कालका पूर्ण बोध। ४ मायावी पदार्थोंका पूर्ण बोध। ५ मन कर्म आदि पदार्थोंका पूर्ण बोध। ६ शब्दकृत मायादिके फलका पूर्ण बोध। ७ संकल्पोंके नाश आदिका पूर्ण बोध। ८ शरीर आदिका पूर्ण बल। ९ पूर्ण शुद्ध स्मृति। १० पूर्ण समाधि। ११ पूर्ण सर्वज्ञता। १२ मुक्त पुरुषोंकी दशा आदिका पूर्ण बोध। १३ सर्व पदार्थोंका स्वाभाविक निरोध है इसलिये अनिरोध कहाता है उस अनिरोधका पूर्ण बोध। १४ सब पदार्थ स्वभावसे अनुत्पन्न हैं स्वरूपमें स्थित हैं इसलिये अनुत्पाद कहाता है उस अनुत्पादका पूर्ण बोध। १५ स्मृतिकी पूर्ण नित्यता। १६ चित्तकी शक्तियोंकी पूर्ण नित्यता। १७ पूर्ण निर्भयता। १८ विचारकी एकता अर्थात् विचार संकल्प विकल्पोंका परिणत न होना ॥

ध०॥ प्रतिभानप्रतिलंभो धर्मालोकमुखं सर्वसत्वसुभाषितसंतोषणतायै संवर्तते ॥ १०३ ॥

ध०॥ आनुलोमिकधर्मक्षान्तिर्धर्मालोकमुखं सर्वबुद्धधर्मानुलोमनतायै संवर्तते ॥ १०४ ॥

उपयोगी है ॥ १०२ ॥ ध० ॥ जिस वस्तुका प्रसंग होवे उसके विषयमें जो नवीन २ अनुभव तुरन्त हो जावें तो उसको प्रतिभान कहते हैं। प्रतिभानका लाभ हो जानेसे सब जीवोंको अच्छे २ धर्म वचन और धर्मके उपदेश सुनाकर संतुष्ट करता है। जिस पुरुषको प्रतिभानशक्ति प्राप्त होती है वह पुरुष व्याख्यानके कालमें योग्य शब्द और योग्य वचनोंका उपदेश कर सकता है जिन योग्य वचनोंसे सब जीव संतुष्ट हो जाते हैं ॥ १०३ ॥ ध० ॥ आनुलोमिकधर्ममें जब क्षान्ति उत्पन्न हो जाती है तो यह धर्मालोकमुख सब बुद्धधर्म अर्थात् सर्वज्ञताधर्मकी अनुकूलताको उत्पन्न करता है। आनुलोमिकधर्ममें क्षान्ति आ जानेसे सब सर्वज्ञताके धर्म अनुकूल हो जाते हैं। आनुलोमिकधर्मका अर्थ यह है कि अविद्या आदि बारह पदार्थोंको क्रमसे एक दूसरेसे उत्पन्न हुआ जानकर यह चित्तमें क्षान्ति कर लेना कि यह सब पदार्थ अविद्याकेही कार्य हैं और अविद्याके निरुद्ध हो जानेसे निरुद्ध हो जाते हैं॥ १ अविद्या, २ संस्कार, ३ विज्ञान, ४ नामरूप, ५ षडायतन, ६ स्पर्श, ७ वेदना, ८ तृष्णा, ९ उपादान, १० भव, ११ जाति, १२ जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्यअपायआशा ॥ अविद्या आदि यह बारह पदार्थ हैं। इन सबका आदिकारण अविद्या है। अविद्याके होनेपर संस्कारोंकी प्रतीति होती है, जबतक चित्तमें संस्कार हैं तबतक अविद्याकी उपस्थिति जाननी चाहिये। और संस्कारोंके होनेपर विज्ञान भासता है। और विज्ञानके होनेपर नामरूप होता है। नामरूपके होनेपर षड् आयतनकी प्रतीति होती है (मन और पांच इंन्द्रियका नाम षडायतन है।)। और षडायतनके होनेपर विषयोंका स्पर्श प्रतीत होता है। स्पर्शके

होनेपर वेदना अर्थात् सुखदुःखकी प्रतीति होती है। वेदनाके होनेपर तृष्णा अर्थात् रागद्वेषकी प्रतीति होती है। तृष्णाके होनेपर उपादानकी प्रतीति होती है। विषयोंके ग्रहण करनेका नाम उपादान है। उपादानके होनेपर भव अर्थात् संसारकी प्रतीति होती है। भवके होनेपर जाति अर्थात् जन्मकी प्रतीति होती है। और जातिके होनेपर बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोदन, दुःख, दौर्मनस्य (मनका दुःखी होना), अपाय और आशा यह सब दुःख प्रतीत होते हैं। इस प्रकार इन सब दुःखोंकी उत्पत्तिका मूल कारण अविद्या है। ऐसा जानकर जो चित्तमें क्षान्ति आ जाती है उसको आनुलोमिकधर्मक्षान्ति कहते हैं॥ इसीको उलटा विचारनेसे प्रातिलोमिक धर्मक्षान्ति कहाती है। जरा आदि दुःख जातिके होनेपर प्रतीत होते हैं, जाति भवके होनेपर प्रतीत होती है। भव उपादानके होनेपर प्रतीत होता है। उपादान तृष्णाके होनेपर प्रतीत होता है। तृष्णा वेदनाके होनेपर प्रतीत होती है। वेदना स्पर्शके होनेपर प्रतीत होती है। स्पर्श षडायतनके होनेपर प्रतीत होता है। षडायतन नामरूपके होनेपर प्रतीत होता है। नामरूप विज्ञानके होनेपर प्रतीत होता है। विज्ञान संस्कारके होनेपर प्रतीत होता है। संस्कार अविद्याके होनेपर प्रतीत होते हैं। इसलिये अविद्याके निरोध हो जानेसे सब दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती है। और अविद्याका पूर्ण निरोध सर्वज्ञताके पा लेनेसे होता है॥ १०४ ॥ ध० ॥ जो पुरुष ऐसी भूमिपर पहुंच जाता है कि जहांसे फिर पतित होनेकी शंका नहीं रहती है और वह पुरुष अवश्य सर्वज्ञताका साक्षात्कार करता है तो सर्वज्ञ योगी उस पुरुषको यह आशीर्वचन कह देते हैं कि अमुक कालमें तुम सर्वज्ञताको साक्षात्कार करके जगत्‌का हित कल्याण करके निर्वाणको पाओगे। ऐसे वचनको व्याकरण कहते हैं॥ जो पुरुष अनुत्पत्तिक धर्ममें क्षान्तिको पा लेता है उसको इस

ध०॥ अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिर्धर्मालोकमुखं व्याकरणप्रतिलम्भाय संवर्तते ॥ १०५ ॥

धर्मालोकमुखके प्रतापसे व्याकरणका लाभ होता है। जब पुरुष अनुत्पत्तिक धर्ममें क्षान्तिको उत्पन्न कर लेता है तो सर्वज्ञ बुद्ध योगी उस पुरुषका व्याकरण कर देते हैं ॥ अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति उस क्षांतिको कहते हैं जो क्षान्ति यह भावना करनेसे मिल जाती है कि सब पदार्थ जगत्के अनुत्पन्न हैं अर्थात् केवल चित्तके धर्म हैं। वह पदार्थ पुरुषको न सुख देते हैं और न दुःख देते हैं किन्तु पुरुषकी जैसी २ कल्पना होती है वैसा २ ही भाव जीमें करता है और वैसा २ ही सुख दुःख उसको राग द्वेषके होनेसे उत्पन्न हो जाता है इसलिये जिस पुरुषके राग द्वेष सब पदार्थोंसे हट जाते हैं तो वह सब पदार्थ रहते हुएभी उस पुरुषको सुख दुःख नहीं पहुंचा सकते हैं। इसलिये उस विरक्त पुरुषकी दृष्टिमें वह सब अनुत्पन्नसे हैं और न होनेके बराबर हैं और वह पुरुष उन सब पदार्थोंको शुद्धसा जानता है क्योंकि उन पदार्थोंमेंसे दोषदृष्टि निकल जाती

ध०॥ अवैवर्तिकं धर्मालोकमुखं सर्वबुद्धधर्मप्रतिपूर्त्यै संवर्तते ॥ १०६ ॥

है। इसलिये कहनेमें आता है कि सब पदार्थ शुद्ध हैं। ऐसी दृढ क्षान्ति जब चित्तमें उत्पन्न हो जाती है तो उसको अनुत्पत्तिक क्षान्ति कहते हैं और इस क्षान्तिको पा लेनेसे पुरुष व्याकरणका लाभ कर लेता है ॥ १०५ ॥ ध० ॥ जब बोधिसत्वयोगी ऐसी भूमिपर पहुंच जाता है कि जहांसे नीचे गिरनेकी शंका नहीं रहती है। तो ऐसी भूमिको अविनिवर्तनीयभूमि कहते हैं। अष्टसाहस्रिकामें वह सब लक्षण एक अध्यायमें दिये हैं जिनसे अविनिवर्तनीय बोधिसत्वकी पहचान हो जाती है। इसी भूमिका नाम अवैवर्तिक है। जो बोधिसत्व योगी इस धर्मालोकमुखको पा लेता है उसको सब बुद्धधर्मोंकी पूरी २ प्राप्ति हो जाती है ॥ इसलिये अविनिवर्तनीय भूमिमें स्थित होना चाहिये और उन कर्मोंका आचरण करना चाहिये जिससे वह

भूमि प्राप्त हो जावे ॥ १०६ ॥ ध० ॥ जिस योगीको एक भूमिसे दूसरी भूमिमें जानेका ज्ञान हो जाता है तो इस धर्मालोकमुखके प्रभावसे धर्मज्ञज्ञानरूप अभिषेकको प्राप्त हो जाता है ॥ जब योगी सर्वज्ञताको साक्षात्कार कर लेता है तो उस कालमें देवता आकर उस बुद्ध पुरुषको स्नान कराते हैं। जैसे चक्रवर्ती राजाको राज्यका अभिषेक अर्थात् स्नान कराते हैं ऐसेही देवता इस बुद्ध पुरुषको धर्मज्ञ ज्ञानका अभिषेक

ध०॥ भूमेर्भूमिसंक्रान्तिज्ञानं धर्मालोकमुखं धर्मज्ञज्ञानाभिषेकतायै संवर्तते ॥ १०७ ॥

ध०॥ अभिषेकभूमिर्धर्मालोकमुखमवक्रमणजन्माभिनिष्क्रमणदुष्करचर्याबोधिमण्डलोपसंक्रमणमारध्वंसनबोधिविबोधनधर्मचक्रप्रवर्तनमहापरिनिर्वाणसन्दर्शनतायै संवर्तते ॥ १०८ ॥

इति श्रीशाक्यमुनिभगवद्बुद्धोपदिष्टं धर्मालोकमुखं समाप्तम् ॥

कराते हैं ॥ जो पुरुष एक भूमिसे दूसरी भूमिमें जानेके ज्ञानको पा लेता है वह पुरुष जबतक धर्मज्ञज्ञानके अभिषेकको नहीं पाता है तबतक पुरुषार्थसे निवृत्त नहीं होता है ॥ १०७ ॥ ध० ॥ अभिषेकभूमि उस भूमिको कहते हैं जब देवता बुद्ध पुरुषको धर्मज्ञ ज्ञानका स्नान कराते हैं और बुद्ध पुरुष सर्वज्ञ होकर धर्मज्ञ ज्ञानके सिंहासनपर बैठता है और धर्मचक्रका प्रवर्तन करता है ॥ यह अभिषेकभूमि धर्मालोक-

---

१ महावस्त्ववदान नाम ग्रन्थमें दशभूमि इस प्रकार लिखी हैं। दुरारोहा। वर्धमाना। पुष्पमंडिता। रुचिरा। चित्रविचित्रा। रूपवती। दुर्जया। जन्मानुदेशा। यवरा। अभिषेका॥ दश भूमीश्वर नाम ग्रन्थमें दशभूमि इस प्रकार लिखी हैं। प्रमुदिता। विमला। प्रभाकरी। अर्चिष्मती। दुर्जया। अभिमुखी। दुरंगमा। अचला। साधुमती। धर्ममेघाभूमि ॥ साधारण पुरुषकी दशासे क्रमपूर्वक बुद्धभूमिपर पहुंचनेको अभिषेकभूमि कहते हैं। इसीको धर्ममेघाभूमि कहते हैं। और पातंजल योगसूत्रमें इसी दशाको धर्ममेघध्यान कहते हैं ॥

मुख है और इसको पाकर इन कर्मोंकी पूर्णताको पा लेता है वह कर्म यह हैं। १ गर्भमें प्रवेश करनेका नाम अवक्रम है। २ जन्मनेका नाम जन्म है। ३ गृहको त्याग संन्यस्त हो जानेका नाम अभिनिष्क्रमण है। ४ पूर्ण तपस्को करनेका नाम दुष्करचर्या है। ५ तपस्को पूरा करके मारको जीतने और सर्वज्ञताको साक्षात्कार करनेके लिये पीपलके वृक्षके नीचे आसन बांधनेका नाम बोधिमंडलोपसंक्रमण है। ६ मारको

१ अमरकोशमें चर्याका अर्थ ईर्यापथस्थिति लिखा है। धर्मादिके मार्गमें स्थित होनेको चर्या कहते हैं। और यह इन नामोंसे प्रसिद्ध है। भैक्ष्यचर्या, ब्रह्मचर्या, बोधिसत्वचर्या, दुष्करचर्या, बुद्धचर्या। महावस्तु अवदानमें चार चर्या इस प्रकार लिखी हैं। १ प्रकृतिचर्या, मातापिताकी सेवा करना, ब्राह्मणोंकी पूजा करना, धर्मको कभी नहीं भूलना, दीनोंपर दया करना, ईश्वरको पूजना इत्यादि कर्म प्रकृतिचर्यामें किये जाते हैं। २ प्रणिधान-चर्या, इस चर्यामें जो प्रवृत्त होता है वह यह चाहता है कि मैं बुद्धभूमिको प्राप्त करूं और पूर्ण सर्वज्ञताको पाकर जगत्का उपकार करूं। ३ अनुलोमचर्या, इस चर्यामें वह पुरुष कहाते हैं जो क्रम २ से सर्वज्ञताकी प्राप्ति करनेमें लगे हों। ४ विवर्तनचर्या, इस चर्यामें वह पुरुष कहाते हैं कि जो संसारसे मुक्त होकर फिरभी जगत्के उपकारके लिये संसारमें आनेका उपाय करते हैं॥ ललितविस्तरमें प्रणिधानके चार भेद इस प्रकार लिखे हैं। यह चार प्रणिधान बोधिसत्वके चित्तमें इस प्रकार उत्पन्न होते हैं। १ प्रथम प्रणिधान, अर्थात् संसारमें पुनः पुनः आवागमनरूप महाबन्धनमें पडे हुए सब लोकोंके संसारबंधनको काटकर बन्धनप्रमोक्ष शब्दको उदीर्ण करूं और गाढ बन्धनमें बंधे हुए जीवोंके बंधनको तोड दूं। २ द्वितीय प्रणिधान, अर्थात् संसारमें महा अविद्या अन्धकारमें पडे हुए और अज्ञानरूप तिमिरसे आवृतनेत्र और प्रज्ञाचक्षुःसे रहित लोकको महान् धर्मका आलोक प्राप्त कराऊं और ज्ञानरूप औषध देकर अज्ञानरूप अंधताको दूर करूं। ३ तृतीय प्रणिधान, अर्थात् मानमें फंसे हुए लोकको मानसे छुटाकर मानकी ध्वजाको गिराकर धर्मकी ध्वजाको खडा करूं। ४ चतुर्थ प्रणिधान अर्थात् संसारमें पुनः पुनः आते जाते उत्पन्न होते और मरते हुएभी आलस्यमें पडे हुए लोकको शान्त करनेवाले प्रज्ञातृप्तिकर धर्मका उपदेश करूं॥

पराजित करनेका नाम मारध्वंसन है। ७ सर्वज्ञताको साक्षात्कार करनेका नाम बोधिविबोधन है। ८ धर्मका उपदेश और दान करके सब जीवोंकी धर्मरूप अमृतसे पिआस बुझानेका नाम धर्मचक्रप्रवर्तन है। ९ महामोक्ष कैवल्यके मार्गको दिखाकर आपभी महानिर्वाणको प्राप्त हो जानेका नाम महापरिनिर्वाणसंदर्शन है॥ इन सब कर्मोंकी चर्चा ललितविस्तरमें शाक्यमुनि बुद्ध भगवान्‌का जीवनचरित वर्णन करते हुए लिखी है। और जितने यह एक सौ आठ अंग धर्मके लिखे हैं इन सबका विस्तारसे वर्णन अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितामें वर्णित है॥ **संक्षेपसे मोक्षकी व्याख्या**॥ देखो पातंजल योगसूत्र॥ जब चित्तकी वृत्तियोंका निरोध हो जाता है तब द्रष्टा पुरुषकी अपने स्वरूपमें स्थिति हो जाती है॥ १।३॥ अविद्याके दूर हो जानेसे

यो०॥ **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥ १। ३॥**

यो०॥ **तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशः कैवल्यम्॥ २। २५॥**

यो०॥ **तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्॥ ३। ५०॥**

यो०॥ **सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्॥ ३। ५५॥**

पुरुष और प्रकृतिके संयोगका अभाव हो जाता है। और इस संयोगकी निवृत्तिको हान कहते हैं और यही पुरुषका कैवल्य कहा जाता है। कैवल्यका अर्थ केवल हो जाना है। प्रकृतिका संयोग छूट जानेसे पुरुष केवल अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। इसी दशामें पुरुषको मुक्त कहते हैं॥ २। २५॥ जब पुरुषको सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञताकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है तो उस सिद्धिसेभी चित्तको विरक्त कर लेनेसे सब दोषोंका बीज नष्ट हो जाता है तब पुरुष कैवल्य मोक्षको प्राप्त करता है॥ ३। ५०॥ जब बुद्धिसत्त्व अपने स्वरूपमें स्थित शुद्ध हो जाता है और पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित शुद्ध हो जाता है तब

कैवल्यमोक्ष होती है ॥ ३ । ५५ ॥ जब सत्त्व रजस् और तमस् यह गुण पुरुषार्थसे रहित हो जाते हैं तो फिर यह स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं और फिर इनसे कार्य नहीं होते हैं । पुरुषको भोग कराके मोक्ष दिला देना यही गुणोंका पुरुषार्थ है । जब यह पुरुषार्थ गुणोंका निवृत्त हो जाता है तब चितिशक्ति अर्थात् चेतन

यो० ॥ **पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥४।३४॥**

इति श्रीमहर्षिपतंजलिकृतयोगसूत्रं समाप्तम् ॥

पुरुषभी अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है फिर शरीरमें पुनः पुनः जन्मने और मरनेका कार्य नहीं रहता है ऐसी दशामें फिर सब दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती है इसीको कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥ ४ । ३४ ॥

इति श्रीपातंजलयोगसूत्रभाषाव्याख्या समाप्ता ॥ १०८॥ ध० ॥ इति श्रीधर्मालोकमुखभाषाव्याख्या समाप्ता ॥

॥ विज्ञापन ॥

संस्कृतमूलपाठेऽशुद्धिसूचकं पत्रम् ॥

पत्रे.	पंक्तौ.	अशुद्धस्यस्थाने.	शुद्धम्.	पत्रे.	पंक्तौ.	अशुद्धस्यस्थाने.	शुद्धम्.
१२	९	सत्व	सत्त्व	२४	१०	सर्वँ	सर्व
१५	२६	पद पुरुष	पुरुष	३४	११	धर्म	धर्मा
१९	२५	युक्ता	युक्ताः				

व्याख्यासूचीपत्रम् ।

व्याख्या.	पत्रे.	व्याख्या.	पत्रे.	व्याख्या.	पत्रे.	व्याख्या.	पत्रे.
धर्मका लक्षण	१	ब्रह्मचर्याकी व्याख्या	२०	भावनाकी व्याख्या	५०	समाहितचित्तकी दशा	६०
पापकी व्याख्या	२	मुमुक्षुके उद्यन	२२	विघ्न और मारकर्मकी		धर्ममेघसमाधिकी चर्चा	६१
पुण्यकी व्याख्या	३	कर्माशयका वर्णन	२४	व्याख्या	५१	योगकी भूमिके भेद....	६१
व्रतोंका वर्णन	४	क्लेशोंका वर्णन	२५	स्मृतिका वर्णन	५३	संबोधिके अंग	६२
श्रद्धाकी व्याख्या	५	दुःखकी व्याख्या	२६	समाधिके साधन	५४	अष्टांगमार्ग	६३
प्रज्ञाका वर्णन	७	वासनाकी व्याख्या....	२९	समापत्तिका वर्णन	५५	षट्पारमिताकी व्याख्या	६[illegible]
वाणीकी शुद्धि	८	धर्मचरणका फल	३०	सबीज समाधिका वर्णन	५७	३२ लक्षणकी व्याख्या	६६
चित्तकी निर्मलता	८	पंचस्कन्धकी चर्चा	३४	प्रज्ञाका वर्णन	५७	८० अनुव्यंजनकी	
अल्पज्ञताकी व्याख्या	९	भावनाका वर्णन	३६	निर्बीज समाधिका वर्णन	५७	व्याख्या	६७
सर्वज्ञताकी व्याख्या	११	सिद्धिकी व्याख्या	३६	संप्रज्ञात समाधिका वर्णन	५७	४ ध्यानोंकी व्याख्या	७०
ईश्वरकी विशेष व्याख्या	१२	समाधिका लक्षण	३८	असंप्रज्ञात समाधि-		दशबलकी व्याख्या	७२
धर्मका वर्णन	१३	संयमका वर्णन	३९	का वर्णन	५८	पंचचक्षुःकी व्याख्या	७३
योगका वर्णन	१४	अष्टांगयोगका वर्णन	४०	सर्वधर्मापरिगृहीत		दशभूमिकी चर्चा	७६
वैराग्यकी व्याख्या	१५	प्राणायामका वर्णन....	४१	समाधिकी व्याख्या	५८	अभिषेकभूमिकी चर्चा	७६
देवलोकोंका वर्णन	१७	परिणामका वर्णन	४२	शून्यता समाधिकी		मोक्षकी व्याख्या	७७
अहिंसाधर्मकावर्णन....	१९	विवेकज ज्ञानका लक्षण	४९	व्याख्या	५९		

विज्ञापनम् ।

इति

॥ श्रीधर्मालोकमुखसूत्रम् ॥

यह ग्रन्थ कल्याणमें गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीके
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" यन्त्रालयमें छापकर प्रसिद्ध किया.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खुन्नीलाल शास्त्री बरेली.